CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मैंदानी मैंनाय

बो० १५०

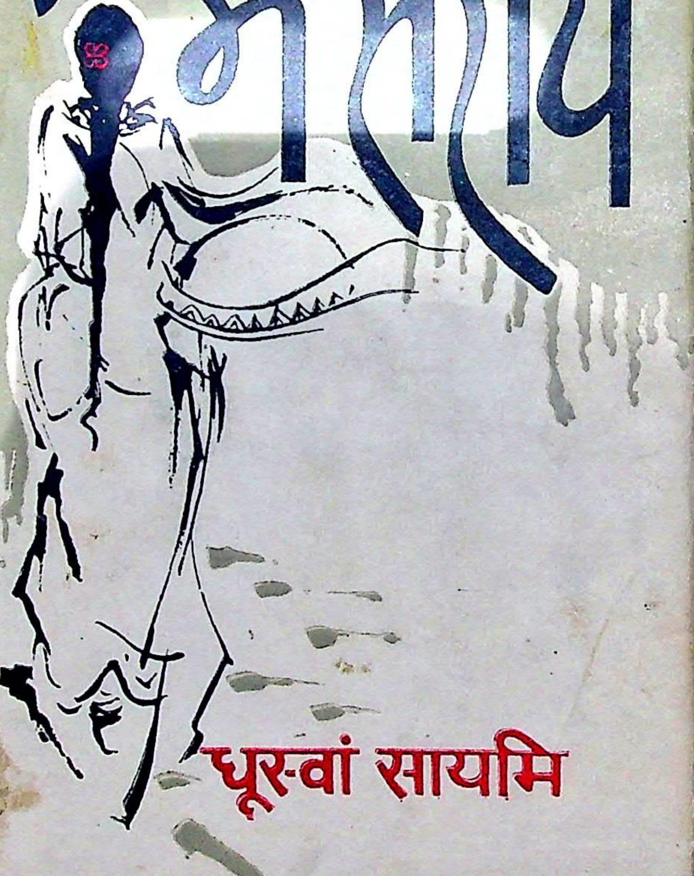

धूरवां सायमि

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मैं दासी : मैं सराय

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मैं दासी : मैं सराय

धूस्वां सायमि

राधाकृष्ण प्रकाशन

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

©
१९७४

नई दिल्ली
धूस्वां सायमि

मूल्य
८ रुपये

प्रकाशक
अरविन्द कुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन
२ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०००६

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

नीलू को

जिसने माँ की ममता, बहन का प्यार और
प्रेमिका का आग्रह प्रदानकर
इस हिन्दी उपन्यास के सृजन की प्रेरणा दी।

—धूस्वां

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

खंड : १

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मेरा अतीत मेरे सामने से गुजरने के लिए कसमसाने लगा।...नहीं, मुझे अतीत की याद में बहना अच्छा नहीं लगता। अतीत में उलझ कर वर्तमान से छिटक कर भविष्य बनाने की इच्छा नहीं। मैं अतीत की याद में नहीं जीना चाहती। भविष्य की आशा में नहीं मरना चाहती। मैंने वर्तमान में जीना सीखा है और वर्तमान में ही मरना चाहती हूँ। हाँ, मुझे गाना अच्छा लगता है, मुझे मरना पसन्द है। लहरें लहरों से टकरा कर चाँदनी की लय में एक जीवनदायी संगीत की रचना करके मृत्यु की महत्ता का वर्णन कर रही थीं। कितना शान्त, कितना स्वच्छ संगीत था !

मेरे पैर पानी की ओर बढ़ने लगे। चारों ओर नीरवता छाई थी। आकाश में जेट विमानों के आवागमन की एक गंभीर ध्वनि गूँज रही थी। नदी के दो किनारों पर तलाक लिये हुए पति-पत्नी की तरह दो शहर अनजाने में छटपटा रहे थे। बिछुड़ कर भी जीना पड़ता है। जीने के लिए बिछुड़ना पड़ता है। यही जीवन है। वर्तमान धक्कम-धक्का करके मृत्यु की ओर चल पड़ा था परन्तु अतीत बाधाएँ डाल कर मुझे रोक रहा था। अतीत और वर्तमान के संघर्ष में अतीत का पलड़ा भारी होता गया। वर्तमान की छाया धूमिल-सी पड़ने लगी। अतीत ने अपना सिर पूरी तरह उठा लिया। तब सारा अतीत मेरे सामने फैल गया, और वर्तमान नीरवता की गोद में समा गया।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

दो

अकेला कमरा मुझ डरा रहा था।

मैं कभी उन लोगों के बैड-रूम में, कभी लिविंग-रूम में और कभी किचन में जाती। पर जहाँ भी जाती अकेला कमरा मेरा पीछा करता। मुझे डर लगने लगा। अकेला कमरा...अकेली स्त्री। बाहर देखने के लिए पर्दा हटाया। नहीं, नहीं, मुझे पर्दा नहीं हटाना चाहिए। उन लोगों को यह अच्छा नहीं लगता। शीशे की खिड़कियाँ हैं। बाहर का वातावरण देख लेगा कि मैं अकेले कमरे से भाग रही थी और किस तरह अकेला कमरा मुझे अकेली पा कर परेशान कर रहा था। पर अगर देख ही लिया तो क्या? मैंने सारे पर्दे हटा दिये। कमरे के अँधेरे ने बाहर भी अँधेरा फैला दिया। दूर होते हुए भी मेरी आँखों में समाई घड़ी ने मुझे सतर्क किया कि अब रात आने वाली है। बग़ल में ही लटकते तापयन्त्र ने कहा कि रात में बर्फ गिर कर रहेगी। साथ वाले कमरे में बैठा बूढ़ा अपने काम में व्यस्त था। शायद उसने मुझे देख लिया, तभी तो कुछ मुस्करा कर सिर हिला दिया। दुविधा में मेरे होठों पर भी मुस्कराहट आ गयी। मेरी दृष्टि आने वाले संसार के लिए विचलित हो उठी। ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ मुझसे आँख-मिचौनी खेलने लगीं। मेरी नज़र उन तक जा कर टकराहट की बेदर्दी के कारण वापस आ जाती थी। फिर मैं इन्हें देखती चली गयी। ऐसा लगा कि यह मकान सिगरेट और दियासलाई के डिब्बों का बना है। मेरा मन बिखरने लगा। एकाएक अजीब-सी चुप्पी छा गयी। मेरा दिल घबराने लगा। मेरी साँस फूलने लगी। एयरकण्डीशन की आवाज़ ने मन को व्याकुल कर दिया। आँखों में आँसू छलछला आये। मैंने खिड़कियाँ खोल दीं। कमरे में ठंड के साथ-साथ बाहर के कोलाहल ने घुसपैठ की। मैं काँप गयी। उन लोगों ने

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मुझे कड़ी आज्ञा दे रखी है कि मुझे खिड़कियाँ या दरवाज़े नहीं खोलने चाहिएँ। खिड़कियों को बंद करके पर्दा गिरा दिया। कोच पर जा कर लेट गयी। अब मुझे न तो अकेले कमरे से डर लग रहा था और न एयरकण्डीशन की सूखी आवाज़ से ही अकुलाहट हो रही थी। धीरे-धीरे मैं अपने संसार में विचरने लगी।

...इन दिनों पिताजी की चिट्ठी क्यों नहीं आती? माताजी कैसी होंगीं? माँ, मेरी माँ...नहीं, नहीं, मुझे ऐसे विचारों को मन में नहीं लाना चाहिए। इस तरह विचारों में बह कर, कल्पना के पर लगा कर भी मुझे अपने स्वजनों के यहाँ जाने का अधिकार नहीं। मैं तो एक नौकरानी हूँ। काम करते रहना मेरा कर्त्तव्य है। फिर इन विचारों से मुझे मिलेगा भी क्या? आज मैं इतनी दूर जीवन देखने के लिए नहीं, जीवन भूल जाने के लिए आई हूँ।

फोन की घंटी वातावरण में कराहने लगी, पर मुझे उठने की इच्छा नहीं हो रही थी।...नहीं, नहीं, मैं कमरे में हूँ। मैं बाहर घूमने के लिए नहीं गयी हूँ। उन लोगों की अनुपस्थिति में मैं किचन में जा कर अच्छी-अच्छी चीज़ें बना कर नहीं खा रही हूँ। मैं बाथ-रूम में जा कर कपड़े धोने के बहाने अपने मुँह पर पाउडर-क्रीम नहीं मल रही हूँ।...मैंने दौड़ कर फोन उठा लिया।

—डिनर के लिए नहीं आएँगे। सिनेमा जा रहे हैं, आने में देरी हो जाएगी।

जी हाँ, घूमना भी केवल उन्हीं लोगों के लिए आवश्यक है। सिनेमा भी केवल उन्हीं जैसे लोगों के लिए है। मैं तो एक नौकरानी हूँ। बस यह टेली-फोन, टेलिविज़न, कोच और कुर्सी। आवाज़ आयी तो उठाओ, मन हुआ तो खोलो और इसी तरह सोने के, बैठने के, खाने के साधन हैं। इन्हें तो खरीद कर लाया गया है परन्तु मैं तो बिना खरीदे ही आ गयी हूँ। मैं तो हमेशा ही पुरानी और हमेशा ही नईहूँ। फोन को क्रेडल पर रखना भी भूल गयी। मुझे अपने आप से संकोच हुआ। इच्छा हुई, कहीं फोन करूँ। पर किसे करूँ? यहाँ मेरा कोई परिचित नहीं, कोई अपना नहीं। मैं तो पराये देश में परायों के बीच जीवन गुज़ार रही हूँ। मैं तड़प उठी। टेलिविज़न खोल दिया। अली-

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

बाबा का दृश्य पर्दे पर गुज़र रहा था। जी हाँ, मुझे टेलिविज़न नहीं देखना चाहिए। मैं तो उनकी भाषा भी नहीं समझती। मैं कुछ नहीं समझती। मैं चालाक हो जाऊँगी। टेलिविज़न जल्दी खराब हो जाएगा। मैं अच्छी तरह रहना सीख लूँगी। मैं मानव बनना जान जाऊँगी। मैं भूल जाऊँगी कि मैं नौकरानी हूँ। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। टेलिविज़न का दृश्य सिमटता हुआ एक ज्योति-बिन्दु में बदला और अन्त में अन्दर ही कहीं लोप हो गया। मेरे पिता ने मुझे ऐसी जगह क्यों भेजा ? कहा जाता है कि वे मुझे पाल नहीं पा रहे थे, खाना नहीं दे पा रहे थे। नेपाल मुझे खिला नहीं सका और मैं खाने के लिए न्यूयार्क आयी हूँ। जिन चीज़ों को मेरे बाप-दादा ने देखा भी नहीं उन्हें मैं खा रही हूँ। बैड-रूम में जा कर रेकार्डप्लेयर लगाकर उसके सुर पर नाचने की इच्छा हुई। जिसको अब खाना मिलता है उस चेहरे को अच्छी तरह देखने के लिए वाश-रूम में जाने की इच्छा प्रबल होने लगी। मैं दौड़ कर गयी और शीशे के सामने जाकर अपने को सँवारने लगी। हाँ, अब तो मैं सुन्दर लगने लगी हूँ। शायद इसी कारण उस दिन गेट-मैन मुझे देख कर मुस्करा पड़ा था। पता नहीं क्यों, मुझे अपने आप ही लज्जा आ गयी। शीशे के अन्दर अपने चेहरे को देख कर एक अजब-सी तृष्णा होने लगी। दिल में एक प्रकार का दर्द फैल गया। इस बार आने वाली धान्यपूर्णिमा के दिन मैं अठारह वर्ष की हो जाऊँगी। पिताजी लिखते हैं कि अब मेरी उम्र में आठ की संख्या आने वाली है, इसलिए मुझे सावधानी से सब-कुछ करना होगा। मुझे याद नहीं कि मेरी आठ वर्ष की आयु में क्या हुआ था ? क्या विपत्ति आई थी ? अब देखूँ कि अठारह वर्ष की अवस्था में कौन-सा संकट मेरे सिर पर मंडराता है। यूँ तो मैं इनके दायरे से बाहर ही कब हूँ ! पता नहीं इससे बड़ी कौन-सी विपत्ति आने वाली है। किसी ने 'काल-बैल' दबायी। मैंने दरवाज़ा खोल कर देखा कि मेरे अन्नदाता की जुगल जोड़ी लौट आयी है। पति वाश-रूम में चले गये और पत्नी मेरे चेहरे पर एक नज़र डाल कर बैड-रूम में चली गयीं। टेलिविज़न तो बन्द था, फिर उन आँखों में नफरत भरी नाराज़गी क्यों थी ? ओह, यह तो मैं भूल ही गयी कि मैं एक नौकरानी हूँ। मैं मन मसोस

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

कर अपने कमरे में चली गयी।

कबूतरखाना जैसा मेरा छोटा-सा कमरा ! एक ओर मेरे कपड़े लटक रहे थे औरदूसरी ओर मेरी फोल्डिंग-कॉट पड़ी थी। सच कहा जाए तो उसके अन्दर अच्छी तरह बैठने के लिए भी जगह नहीं थी। किचन में जल रही बिजली से रोशनी फिसल कर मेरे कमरे में आ रही थी और मेरे कमरे के तख्तों परकेवल डिनर और रिसेप्शनके समय में ठाट-बाट से निकलने वाली ड्रिंक्स की बोतलें आराम कर रही थीं। नेपाल की स्मृति दिलाने वाले सूट-केस से मैंने सुई और धागा निकाला। फटनेको तैयार अपने कपड़ों को सुधारने लगी। मैं तो सिलाई करके भी अपनी जीविका अर्जित कर सकती थी। काम करने पर खाना क्यों नहीं मिल सकता ? इस संसार में बातें बनाने वाला नेतृत्व करता है और काम करने वाला दास बन जाता है ! किचन की बत्ती बुझा कर वे लोग फिर बाहर चले गये। मैंने एक कोनेमें अस्थायी रूप से बने अपने छोटे-से कमरे को बन्द किया। कमरे के बाहर जाने वाले दरवाज़े को 'डबल-लॉक' कर दिया। टेलिविज़न खोल दिया। कभी-कभी मुझे इच्छा होती कि टेलिविज़न में नेपाल आ जाए। घर छोड़े मुझे तीन वर्ष हो गए। मेरी ज़िन्दगी के तीन वर्षों की हत्या हो गयी। मेरा देश मेरे लिए तीन वर्ष पुराना हो गया। मेरे जीवन के तीन स्वर्णिम वर्ष ऐसे ही गुज़र गये। मेरा देश, मेरा घर, मेरे माता-पिता और भाई-बहन सब दूर हो गये। मैं अपने पिता और माँ की सबसे बड़ी सन्तान हूँ। मेरा मन काँप उठा। मेरा हृदय कसमसाने लगा और टेलिविज़न का दृश्य मेरे आँसुओं के कारण धुँधला-सा दिखने लगा।

अपने अन्दर की व्याकुलता को छुपाने के लिए मैंने खाना बनाना चाहा। पर उस दिन मुझे खाना बनाने की भी इच्छा न हुई। केवल मुझी को तो खाना है। यह बेकारकी परेशानी क्यों लूँ ? वातावरण में अँधेरे के साथ बर्फ का बरसना भी शुरू हो गया। सड़क पर बर्फ की एकतह जम गयी। बर्फ की शीतलता ने मेरे मन को प्रफुल्लित कर दिया। शायद हिमालय की बेटी होने के नाते हिम का साथ मिलना मुझे सदा अच्छा लगता है। पिछली सर्दियों में

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

हम एक गाँव में गये थे। बर्फ पर फिसल-फिसल कर चलने में कितना मज़ा आता है ! घुटनों तक बर्फ में धँस जाना ! इस स्मृति से मुझे उसी समय भाग कर बाहर जाने की इच्छा हुई। मैंने बूट पहन लिये और कोट हाथों में लेकर गेट की ओर चल पड़ी। 'की-होल' से देखा कि बाहर कोई खड़ा तो नहीं है। मेरे शरीर को एक झटका लगा। एक लम्बा-तगड़ा नीग्रो लिफ्ट की प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे लगा कि वह हमारे कमरे की ओर देख रहा है। ऐसा मालूम होता था कि वह मेरी उपस्थिति जान गया है और मेरे निकलने का इन्तज़ार कर रहा है। मेरा साहस टूट गया। एक बार बहुत पहले उन लोगों ने कहा था कि रात को अकेले निकलना खतरनाक होता है। नीग्रो-लोग तो आदमी की जान तक ले लेते हैं, लड़कियों से बलात्कार करते हैं। एक मन ने कहा...इससे क्या हुआ। इस जेल जैसे जीवन से तो छुट्टी मिल जाएगी। नहीं, नहीं, जब तक प्राण हैं, मनुष्य की आशा पलती रहती है। इच्छा न होते हुए भी मैंने बूट उतार दिये। बर्फ के कम्बल में लिपटी धरती पर क्रीड़ा करने की मेरी लालसा अतृप्त रह गयी। बर्फ पर खेलने में बड़ा आनंद आता है। अभी कुछ दिन पहले ही सामने वाली कोठी पर कुछ बच्चों ने बर्फ का आदमी बना कर कितना आनंद लूटा था। बर्फ का आदमी ! मैं भी तो बर्फ की ही बनी हूँ। मेरे जीवन से भी तो खेल खेला जा रहा है। मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं, मेरी मृत्यु का भी कोई मूल्य नहीं है। जी हाँ, मेरे परिवार के किसी भी सदस्य के जीवन और मृत्यु का कोई मूल्य नहीं है। टूटे-फूटे घर में बसे दुःखी लोग। बेसहारा परिवार का अनिश्चित जीवन। मैं उधड़े हुए कपड़ों की सिलाई करने लगी। उन्हें कभी इधर, कभी उधर उल-टाने लगी। मेरे सामने मेरा परिवार तैरने लगा। ऐसा परिवार जिसने सब-कुछ खो दिया था परन्तु फिर भी चलता जा रहा है। टूटते हुए इस परिवार के जीवन को पता नहीं कौन सँभाले था !

मेरी माँ के प्रथम पति की मृत्यु उस समय हुई जब वे एक अबोध बालिका थीं। उनकी दूसरी शादी उनकी मर्ज़ी के खिलाफ हुई थी। उन्हें बाल-विधवा के रूप में जीवन गुज़ार देने की प्रबल इच्छा थी, पर उनकी

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

शादी मेरे पिताजी से ज़बरदस्ती कर दी गयी। इस घटना का प्रभाव माँ के मस्तिष्क पर गहरे रूप में पड़ा। सुनती हूँ, इसके बाद माँ ने बातें करना कम कर दिया। उन दिनों तो वे विक्षिप्त-सी हो गयी थीं। पिताजी को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। अब मैं यहाँ हूँ। कौन मेरी माँ के बाल सँवारता होगा और कौन उन्हें नहाने के लिए कहता होगा, और तो और, उनके कपड़े कौन धोता होगा ?...बुआजी आती होंगी। क्या इतना भी सहयोग नहीं करेंगी ? क्यों करेंगी ? नैहर तो विवाहित लड़कियों के लिए आराम करने का घर है। काम करने के लिए तो पति का घर है...।

फोन की घंटी ने मेरी विचारधारा में विघ्न डाला। मुझे एक झटका लगा। सुई हाथ में चुभ गयी। खून भी निकलने लगा। फोन की घंटी बजती जा रही थी।...चिल्लाओ, जितनी शक्ति है दिखाओ। आज मुझे तुम्हारी परवाह नहीं। आज मैं तुम्हें न उठाऊँगी...पर मैं टेलीफोन पर गुस्सा क्यों करने लगी ? इसका क्या दोष ? मेरी अतीत की घटनाओं और वर्तमान के जीवन से इसका क्या रिश्ता ? मैंने झट-से फोन उठा लिया। पर उधर की आवाज़ कुछ कट चुकी थी। मन मारे टेबुल-लैम्प जला लिया। डायरेक्टरी उलटायी। यैलो-बुक देखी, परन्तु मेरा देश कहीं नहीं दिखाई दे रहा था। मुझे एक अजीब भय-सा महसूस होने लगा कि कहीं मेरे मन के अन्दर बनी मेरे देश की तस्वीर लोप न हो जाए। नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। मैं स्मृति का सहारा ले कर शहर से बाहर एक गली के अन्दर गन्दगी में लिपटे हुए अपने मुहल्ले के एक अंधेरे कोने में बसे अपने घर में पहुँच गयी। यह सिकुड़ा हुआ घर मेरा घर है। जी हाँ, मेरा घर...।

फोन फिर बज उठा। इस बार भी न कट जाए इसलिए मैंने तुरन्त उठा लिया। जेनी ने मेरी आवाज़ पहचान ली। उन लोगों के विषय में पूछा। आने वाले शनिवार को वह मेरे लिए कुछ चीज़ें ला देने का वायदा कर रही थी। वह मुझसे बहुत बातें करना चाहती थी पर मुझे विदेशी भाषा में अपने को व्यक्त करने में काफ़ी कठिनाई हो रही थी। मेरी लाचारी ने उसको बातें बन्द कर देने को बाध्य कर दिया। मैंने भी मजबूर हो कर फोन रख

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

दिया। जेनी मुझे प्यार करती है। उसके मन में मेरे प्रति ममता है। वह एक नौकरानी से अपनापन दिखाती है। फिर भी जेनी अपने को सँभाल कर रखती है क्योंकि उन लोगों को मेरे प्रति उसकी सद्भावना अच्छी नहीं लगती। जेनी की एक लड़की मेरी ही उम्र की है। पर उसे क्या पता कि मुझमें और उसकी लड़की में एक गहरी खाई का अन्तर है। मैं एक नौकरानी, जेनी की लड़की...। नहीं, जेनी ऐसा नहीं समझती। पर उसके समझने-न-समझने से क्या होता है ? मेरे अपने, हाँ, अपने ही लोग विदेश में हैं। वे लोग मुझे पुतला समझते हैं। वे लोग तो चाहते हैं कि मैं समझना छोड़ दूँ, जानना छोड़ दूँ। एक मशीन की तरह जो कहा जाए वही करूँ। इसीलिए तो मुझे बाहर जाने से रोक रखा है। कहीं टेलिविज़न से कुछ सीख न लूँ, इसी डर से मेरा टेलिविज़न देखना भी उन लोगों के लिए असह्य हो जाता है। यह भी क्या जीवन है ? ऐसे जीवन से तो मृत्यु भली। रात की घनी ओढ़नी लपेटे हुए, आकाश के प्रेम में मग्न ऊँचे-ऊँचे घरों में अब भी हलचल दिखाई दे रही थी। चाइनीज़ रेस्टुराँ से लोग बाहर आने लगे थे। हरी और लाल रोशनी के इशारे पर सड़क चल रही थी। मुझे भूख लगने लगी। मैं किचन में गयी। मैंने चार अण्डों का आमलेट बनाया। सन्तरे का रस जी भर कर पिया। मुझे पिताजी ने यहाँ अपना पेट पालने के लिए भेजा है। मैं तो यहाँ खाने के लिए ही आई हूँ। खाऊँगी, खूब खाऊँगी, और आज तो कोई रोकने वाला भी नहीं है। मेरी आँखें बीयर, वाइन और ह्विस्की पर चिपकने लगीं। इनके प्रति मेरे अन्दर एक प्यास उमड़ने लगी। सुनती हूँ, इसे पीने में बड़ा मज़ा आता है, आदमी अपना सारा दुःख भूल जाता है। मैं एक बोतल उठाने के लिए बढ़ी, पर वहाँ कुछ आँखें आग्नेय दृष्टि से मेरी ओर देख रही थीं। पिताजी की आँखें, माँ की आँखें। नहीं, ये तो उनकी आँखें नहीं थीं। पर थीं परिचित आँखें। जी हाँ, वहाँ उभर रही थीं उन लोगों की चार घृणा भरी आँखें। इन आँखों ने मेरे चेहरे पर एक चपत जमा दी। जी हाँ, ये लोग मुझ से जाने-अनजाने में हुई भूल पर मुझ जैसी अबोध बालिका पर चपत जमाने से बाज़ नहीं आते। ऐसे समय में मुझे शारीरिक चोट से अधिक

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मानसिक चोट लगती थी। जिन गालों पर माता-पिता का थप्पड़ कभी नहीं पड़ा था उन पर इन परायों की चपत पड़ना मेरे लिए अत्यन्त पीड़ाजनक हो जाता था। पर उस दिन, पता नहीं, मुझमें कहाँ से साहस आ गया। एक बोतल मेरे हाथ में आ ही गयी। पर मेरे अपरिचित हाथों से फिसल कर टूट गयी। एक को अनेक में देख कर मैं मायूस हो गयी। लगता था मेरा दिल फट जाएगा। पर मन को सन्तोष हुआ कि मैंने शराब नहीं पी। एक दिन जब मैंने उन लोगों से कहा कि मैं शराब नहीं पीती हूँ तो वे कितना बिगड़े थे! कहने लगे, दादी और बुआ को तो शराब बनाने से फुर्सत नहीं, और यह मेम-साहिबा रोब जमाती हैं कि मैं शराब नहीं पीती...। मैंने झूठ तो नहीं बोला था। ठीक है हमारे घर में शराब बनायी जाती है और उसी से वे जीविका अर्जित करते हैं। इसी बात पर तो बड़े भैया घर छोड़ कर किराये के मकान में चले गये थे। पर मैं पीती नहीं हूँ, उन लोगों को इसे न मानने में पता नहीं क्या मज़ा आया। अगर मैं ही 'हाँ' कह देती तो क्या होता। मैंने संभल-सँभल कर शीशे के टुकड़ों को उठाया। फर्श पर से शराब को साफ किया। सब बत्तियाँ बुझा कर बाहर आ गयी। मेरा संसार कितना सीमित था! किचन से लिविंग-रूम—लिविंग-रूम से किचन और अन्त में अपनी कोठरी में रात-भर का विश्राम। हाँ, मैं तो भूल ही गयी थी कि बिस्तर लगाने और सफाई के लिए बैड-रूम में भी जाती हूँ। बाश-रूम तो किसी के न चाहने पर भी साँझा है। मेरा जीवन इन चन्द कमरों में पल रहा था। शराब तो मैंने नहीं पी और पीती भी नहीं हूँ परन्तु शराब ने मेरे जीवन को पी लिया है और पी रही है। शायद जीवन-भर मेरे परिवार को पीती रहेगी। इसी शराब बनाने का बहाना लेकर भाभी भाईसाहब को घर से बाहर ले गयीं, जिस समय उनकी बड़ी आवश्यकता थी। कितने विश्वास के साथ पिताजी ने भाईसाहब की परवरिश की थी! उन पर कितनी आशाएँ केन्द्रित थीं! शराब के धंधे से बुआएँ अपने को सम्पन्न बना रही थीं। विवाहित नारी को अपना मायका भी पराया लगता है। उन्हें इसके गिरने और टूटने का कोई भय नहीं होता। उनका स्नेह घर से नहीं बल्कि घर से मिलने वाली सम्पत्ति से होता है। माँ

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

का कुछ स्वस्थ मन अपने बेटे को पत्नी की साड़ी में फँसता देख कर फिर फिसल गया। शादी की उम्र में पहुँची दीदी का भाग्य तड़प कर रह गया। मैं तो उन दिनों छः वर्ष की थी। इसका मुझ पर कोई असर न पड़ा। मुझसे छोटे दो भाई और एक बहन थी। परिवार का भार न सँभाल सकने के कारण पिताजी के दिमाग़ में एक धक्का लगा। पारिवारिक चिन्ता ने उन्हें विचलित कर दिया। हम सब बच्चों को उनका प्यार कम मिलने लगा। माँ तो केवल जान देना ही जानती थीं। फिर भी बार-बार फिसल कर गिरते हुए भी जीवन चल रहा था। कुछ वर्षों के बाद एक दिन ऐसा हादसा हो गया जिसे चाह कर भी मैं भूल नहीं सकती। उन दिनों मेरी आयु आठ वर्ष की थी। एक दिन भाईसाहब काम से लौटे तो उन्हें खून की कै हो गयी। पिताजी किसी को उनके यहाँ जाने नहीं देते थे। उनका दिल टूट चुका था। हमने यह सुना कि भाभी को अपने पति की इस अवस्था पर चिन्ता नहीं थी। उन दिनों उनका अधिक समय मायके में कटता था। वे पति से दूर हो कर मायके के नज़दीक सरक गयीं। भाईसाहब ने काम पर जाना नहीं छोड़ा। परन्तु काम उनको निगलने लगा। यह उन्हें भी पता था। एक दिन सुना कि अब वे बिस्तर से उठ नहीं सकते। पिताजी फिर भी उन्हें देखने के लिए नहीं गये। दादी, माँ और हम लोग गये। भाभी ने प्रचार कर दिया कि हम लोग उनका धन लेने आए हैं। फिर हमारी इच्छा होते हुए भी हम न जा सके। और एक रात जो होना था वही हो गया। भाईसाहब इस संसार से चल बसे। इसी कारण पिताजी को मेरी उम्र में आठ का अंक आने से भय लग रहा था। मेरे भैया की मृत्यु बेमौत हुई थी। वे मरे नहीं थे, उनकी हत्या की गयी थी, और हत्या की थी भाभी ने। मुहल्ले वाले कहते थे कि मरने की रात को पति-पत्नी में काफी झगड़ा और मार-पीट हुई थी। मेरी भी तो हत्या की जा रही है। कितना भी काम करूँ, खुश नहीं कर पाती। मैं खिड़की पर चली गयी, पर्दा हटा दिया। सड़क अब भी जीवन से परिपूर्ण थी। रात अब भी जवान थी। यहाँ सड़क और रात कभी नहीं मरती। मोटरों का आना-जाना जारी था। जब देखो इनमें हलचल है, जीवन है और मेरी ओर देखो

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

जो हमेशा मुर्दा हूँ, जो कभी भी जिन्दा नहीं हो सकती। मेरे हाथ गर्दन पर चले गये। मैंने हाथों को गर्दन पर खूब फेरा। मुझे अपने से भय लगने लगा। नहीं, मुझे आराम करना चाहिए। इस तरह तो मैं पागल हो जाऊँगी। उन लोगों के पास चाबी तो है ही। मैं कब तक इन्तज़ार करती रहूँ। कह दूँगी कि नींद आ गयी और सो गयी।

...सवेरे ही कीर्तिपुर गयी, अपने मामा के घर। सरस्वती-पूजा का दिन था। मामी ने कहा, चलो अठारह वर्ष लगने की दशा को शान्त किया जाए। मेरा अठारहवाँ वर्ष सबके लिए भय की वस्तु बन गया था। देवी-देवताओं के मन्दिरों में गयी। फिर बातों ही बातों में संध्या घिर आई। बस का कोई ठिकाना नहीं था। पैदल ही चलने लगी। पर एकाएक मेरी सड़क खो गयी। देर हो रही थी। मैं घबरा गयी। साँस फूलने लगी...।

मेरी नींद टूट गयी। पार्टी से आने के बाद उन लोगों का रिहर्सल चल रहा था। शायद वातावरण ने मेरे जगने की सूचना दे दी। दोनों जने मशीन की तरह अपने कमरे में चले गये। मैंने जी-भर कर पानी पिया। सत्य और स्वप्न के बीच त्रिशंकु बना मेरा मन उबलने लगा। मुझे उसी क्षण मामा के घर जाने की इच्छा हुई। ठीक है, मामा उन लोगों की तरह धनी नहीं हैं और उनके यहाँ इस जगह की तरह खाने को नही मिलता। पर मैं वहाँ किसी की चेरी नहीं थी। मैंने अपने बचपन का एक बड़ा हिस्सा वहीं व्यतीत किया था। वहाँ मैं कितनी स्वतन्त्र थी! दिन भर बकरी चराने जाती थी। दूर पहाड़ियों में बसी बसती और वहाँ के लहराते खेत बहुत ही मनोरम लगते थे। पर इन सब के ऊपर चमकती हिमाच्छित पर्वत-शृंखलाओं का दृश्य देखते ही बनता था। मुझे तो उसी क्षण उस संसार में जाने की आकांक्षा हुई जहाँ मेरा बचपन पला था। पर अब मैं स्वतन्त्र कहाँ हूँ? मैं तो एक नौकरानी हूँ। मेरी इच्छा का क्या मूल्य है? मेरा जीवन तो अब यूँ ही विलीन हो जाएगा, जैसे रात को दूर पहाड़ों में जगमगाती हुई ज्योति देखते ही देखते ग़ायब हो जाती है। मेरे जीवन को तो इस तरह जगमगाने का मौक़ा भी न मिलेगा। शायद मन्दिरों को फूलों से सजा हुआ, कलाकार

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

की भावनाओं से जगा हुआ अपना शहर मुझे कभी देखने को न मिले। नहीं, नहीं, मैं जाऊँगी, बहुत जल्दी जाऊँगी। मेरा यहाँ दम घुटता है। सचमुच, जब से मैं यहाँ आई हूँ मेरे जीवन में एक अजीब-सी घुटन पैदा हो गयी है। किचन में जाकर लाइट ऑन की। सन्दूक खोल कर ऐरोग्राम निकाला। मैंने इसे छिपा कर रखा था। उन लोगों को मेरा पत्र लिखना भी अच्छा नहीं लगता। पिताजी को भी कितना लिख चुकी हूँ, कुछ जवाब ही नहीं देते। गोपाल भैया को ही लिख दूँ। पर वे तो कहेंगे कि सहने की शक्ति रखो, विजय सत्य की ही होती है। मामाजी का यह पुत्र भी विचित्र जानवर है। कमाना तो दूर, स्वयं-सेवक बन कर अपना रहा-सहा भी लुटाते हैं। पर गोपाल भैया, सत्य सदा ही हारा है। मेरे देखते-देखते मार्टिन लूथर किंग और रॉबर्ट कैनेडी की हत्या हो गयी। गोपाल भैया भी सत्य के नाम पर मेरी हत्या करवा देना चाहते हैं। मैं किसी को भी नहीं लिखूँगी। मैं घुट-घुट कर मर जाऊँगी पर किसी से याचना नहीं करूँगी? आने वाली धान्य-पूर्णिमा के दिन मैं अठारह वर्ष की हो जाऊँगी। आठ वर्ष की थी तो भाई-साहब की मृत्यु हो गयी थी, अब मेरी हत्या हो जाएगी...मैं जल्दी ही अठारह वर्ष की हो जाऊँगी...मैं जल्दी ही मर जाऊँगी।

जब नींद खुली तो देखती क्या हूँ कि मेमसाहिबा किचन में काम करने में व्यस्त है। मैं झटपट किचन में गयी। डाँट लगना तो स्वाभाविक ही था—समय पर उठना तो सीखो, रोज़-रोज़ की बातें भी क्या मुझे समझानी पड़ेंगी। बिगड़े हुए रिकार्ड की आवाज़ की तरह उनका स्वर वातावरण में गूँजने लगा। उधर से एक और स्वर भी सुनाई देने लगा—ब्रेकफास्ट जल्दी लाओ, आफिस जाना है, तुम लोग इतना भी ख्याल नहीं रखते। पति-पत्नी के स्वर आपस में जूझ गये और न जाने किस ओर जा कर विलीन हो गये। मेरे कानों ने कुछ नहीं सुना। मैं अपना काम करने लगी।

जीवन मर रहा था, मृत्यु जी रही थी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

तीन

गोमा !

स्वस्थानी की गोमा। हाँ जी, मैं गोमा हूँ। मैं भी तो गोमा के देश की वेटी हूँ। नहीं, नहीं, मैं गोमा नहीं हूँ। मैं कुछ नहीं हूँ। जी, मैं कुछ नहीं हूँ इसलिए सव-कुछ हूँ। आज मैं अठारहवें वर्ष में कदम रख चुकी हूँ। फिर भी मैं जी रही हूँ, पल रही हूँ। नृत्य सीखने गयीं मेमसाहिबा अभी तक नहीं आईं हैं। साहव तो आफिस से हमेशा लेट आते हैं। फिर आफिस भी तो काफी दूर है। मुझको कोई खास काम नहीं, फिर भी व्यस्त रहती हूँ। काम होने पर भी आराम करने का मौक़ा पा ही जाती हूँ।

'टन-न-नन', डोर-बैल ने मुझे सतर्क किया। 'टिरर', टेलीफोन ने मुझे बुलाया। मैं किधर जाऊँ—झट-से निर्णय न ले सकी। मैंने फोन उठाया। कमरे का प्रवेश-द्वार खुला। पहचानी सूरत एक जानी आवाज़ को अपने साथ लायी। साहव के साथ अपने देश से उनका कोई दोस्तआया था। उधर फोन में मेमसाहिवा की आवाज़ रेंगती आ रही थी। साहव के बारे में पूछ रही थीं। मैंने फोन साहव को दे दिया। उनका घूमने का प्रोग्राम बन गया। मैंने साहव और उनके दोस्त के सामने 'बीयर' और आलू-चिप्स रख दिये। दरवाज़े पर खटका हुआ। मेमसाहिबा भी आ गयीं। तीनों के लिए खाना बनाने को कह कर वे लोग मुझे छोड़कर चले गये। अभी तो छ: ही बजे थे। डिनर तो नौ बजे होगा। काफी समय था। मैंने टेलिविज़न खोल दिया। कोच पर मज़े से बैठ गयी। एकाएक प्रवेश-द्वार खुला। आने वाली मेम-साहिवा थीं। क्या-क्या चीज़ें बनानी हैं, इसके लिए निर्देश देने आई थीं। आज वहुत दिनों के वाद उन्होंने मुझे मनुष्य समझा था। वे खुश थीं और मुझसे भी हँस कर वातें कीं। साहब के दोस्त नेमुझे अपने देश की याद दिला

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

दी। मेमसाहिबा को देखकर आज मुझे अपनी दीदी की याद आ गयी। पर मेरी दीदी तो अब इस संसार में नहीं हैं। यों तो वह मरने के पहले ही मर चुकी थीं। उनकी हत्या भी भाभी ने ही की। दीदी को भाभी के छोटे भाई से मुहब्बत हो गयी थी। जब भैया हमारे साथ थे तो वे हमारे घर में अक्सर आते रहते थे। यह रिश्ता सबको मंजूर था परन्तु भाभी ने नहीं होने दिया, और दीदी घुट-घुटकर मर गयीं। टेलिविज़न चल रहा था। उसमें वियतनाम के युद्ध के विषय में बताया जा रहा था। मेरे अन्दर भी एक वियतनाम का संघर्ष चल रहा था। संघर्ष जीवन को बर्बाद किये जा रहा था। कौन कहता है, मेरा जीवन बर्बाद हो रहा है ? कौन कहता है, मेरे जीवन में बसन्त आने से पहले ही पतझड़ आ गयी है ? मैं बाश-रूम में चली गयी। शीशे में मेरा चेहरा भी मन की बात कह रहा था। दमकते यौवन को देख कर मैं सहम गयी। मुझे अपनी जवानी से डर लगने लगा। खाना मिलता था, बाहर जाने की मनाही थी तब ऐसा होना स्वाभाविक था। बारह दिन कमरे में बन्द रखे जाने पर ही लड़कियाँ कितनी सुन्दर हो जाती हैं ! मैं तो सदा ही कमरे में क़ैद रहती हूँ। पता नहीं कब कमरे से बाहर जाने का उत्सव होगा ? नहीं, नहीं, मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। इससे मेरा मन बिगड़ सकता है और पिताजी की इज्जत नष्ट हो सकती है। मैं यहाँ विचार करने को नहीं, काम करने को आई हूँ। अगर मेरे भाग्य में लिखा होगा तो मेरा जीवन-रूपी फूल खिल कर रहेगा। एकाएक कुछ दिन पहले टेलिविज़न में देखी हुई सिन्ड्रेला फिल्म याद आ गयी। पर मेरे जीवन में यह नहीं बदा है। मैं सिन्ड्रेला नहीं हूँ। मैं चन्द्र हूँ। मैं कल्पना नहीं, यथार्थ हूँ। मैं भावना नहीं, जीवन हूँ। फिर भी मेरे मन के एक कोने में आशा पल रही थी कि मेरे जीवन में भी सिन्ड्रेला जैसी घटना घट जाएगी। कभी-न-कभी मेरा राजकुमार भी आएगा। मैं भूल ही गयी थी कि मैं बाश-रूम में क्यों आई और क्यों शीशे के सामने थी। पर उसी समय ख्याल आया कि मुझे तो आज अच्छा डिनर बनाना है। साहब के साथी भी खाने के लिए आने वाले हैं। कहीं वे ही तो मुझ सिन्ड्रेला के राजकुमार नहीं हैं ? मुझे वे कितनी प्यासी आँखों से बार-

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

बार देख रहे थे। शायद सिर्फ अपने को तृप्त करने की इच्छा होगी। नहीं तो मेरी भी हालत मेरी दीदी जैसी हो जाएगी। मैं तो अठारहवें वर्ष में हूँ। मुझे सँभल-सँभल कर चलना चाहिए। पराए पुरुष के विषय में इस तरह सोचना अच्छा नहीं। मेरे मन में शीत की एक लहर दौड़ गयी। मैं किचन में चली गयी। दादी कहती थीं, पुरुष को वश में करने के लिए उसे अच्छा खाना दो। मैं स्वयं ही अनजाने में गुनगुनाने लगी—

संभालेर राख, संगालेर राख
फेरी फुल्ने हो कि होइन जोवन को फूल।
[संभाल कर रखो, संगाल कर रखो
फिर खिले या न खिले यौवन का फूल।]

मेरे अन्दर का एक और 'मैं' सतर्क होता चला गया। ऐसी अवस्था मेरे मन की कभी नहीं हुई थी। मुझे रोने की इच्छा हुई, पर मेरी आँखें बरसने को तैयार न थीं। मैं एक नौकरानी हो कर इन बेतुकी बातों में क्यों उलझ रही हूँ? हाँ जी, मैं यहाँ एक नौकरानी हूँ, दासी हूँ। विचारों में रमने से काम रुक जाएगा। काम के रुकने पर साहब लोग मुझसे रूठ जाएँगे। मैंने अपने विचारों को झटक दिया। आज तो गेस्ट आने वाले हैं, खाना अच्छी तरह बनाओ। अपने फिसलते जीवन को विचारों के सागर में बहकने मत दो। मैं किचन में जाने के लिए ड्राइंग-रूम में आ गयी।

आखिर समय पर खाना बन ही गया। मैंने चख कर देखा। खाना स्वादिष्ट बना था। एक नौकरानी को अपने हाथों से बनाया हुआ खाना अच्छा लगना कोई ताज्जुब की बात नहीं, उन लोगों को अच्छा लगे तब न! वे लोग आते ही होंगे। खिड़कियों ने मुझे बुला लिया। चौड़ी-लम्बी सड़क पर अभी भी हलचल ज़ोरों पर थी। यहाँ की सड़कें विधवा की माँग की तरह उदास और सूनी कभी नहीं होती। नारी की माँग और सिन्दूर! मैं तो अभी भी लगा सकती हूँ। मेरी शादी तो भगवान विष्णु के बीच-बचाव से न जाने कब की हो चुकी है भगवान् शंकर से! उस समय मैं बहुत बच्ची थी। कितनी आशा और विश्वास के साथ मुझे सजाया गया था। मैंने

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

साड़ी भी पहनी थी। शायद...। मैं कहाँ बहक गयी हूँ ! मैं सिन्दूर नहीं लगाऊँगी। पता नहीं क्यों, सिन्दूर को देख कर मुझे कँपकँपी-सी छूट आती है। जब भी मैं किसी नारी की माँग में सिन्दूर देखती हूँ तो ऐसा लगता है कि नारी के व्यक्तित्व को जुल्म और ज़बरदस्ती का सहारा ले कर भारत और पाक की तरह दो टुकड़ों में बाँट दिया गया है। इसलिए तो नारी की माँग को खून से भर दिया जाता है। ज़ालिम पुरुष—ज़ालिम समाज !

ज़ालिम ज़माने से डर कर मैं खिड़की से हट कर कमरेके वातावरण में आ गयी। नौ तो कब के बज चुके थे परन्तु ज़ालिम लोग अभी तक नहीं आए। रात की बाँहों में कहीं उलझ गये होंगे। इस महानगरी में तो उलझन की सामग्री भरी पड़ी है। अब मैं क्या करूँ ? मुझे कल्पना से भय लगता है और सत्य पर तरस आता है। मैंने ख्यालों में बहना ही अच्छा समझा। उन दिनों मैंने ऐस० ऐल० सी० पास किया था। पिताजी बहुत खुश थे, पर शराब बनाने के सिलसिले में हम लोग पकड़े जा चुके थे। भाईसाहब हम से ही नहीं, संसार से ही बिछुड़ चुके थे। आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। मैंने नौकरी करने की ठान ली। पिताजी के एक दोस्त ने नौकरी दिला देने का वचन दिया। मुझे अभी तक याद है कि जाड़े के दिनों में हर रोज़ बिना नागा जाती थी। पर वेतन के लिए महीने के बाद भी टाल-मटोल होती रही। उनका व्यवहार पिता के दोस्त जैसा नहीं था। एक दिन उनकी बातें सुन कर मेरा सारा शरीर काँप उठा और तब से मैंने उनके यहाँ जाना छोड़ दिया। वे नौकरी दे सकते थे, पर वे इसके बदले में कुछ ऐसी चीज़ चाहते थे जिसकी सोच कर मैं आज भी काँपने लग जाती हूँ। मेरी नौकरी करने की इच्छा पर वज्रपात हो गया। मैं परिवार पर एक बोझ बन गयी और ऐसे ही समय में मुझे यहाँ आने का अवसर मिला। अन्धा क्या चाहे, दो आँखें। बिना सोचे-समझे चली आई। पर यहाँ भी मेरी हालत वैसी ही रही। शहर बदला, देश बदला और बहुत कुछ बदला, पर मेरा हतभाग्य वैसा ही रहा। मुझे तो लगता है कि अब कल्पना में भी अच्छे दिन नहीं आएँगे। क्या गोमा और सिन्ड्रेला की तरह मेरा जीवन भी कभी अँगड़ाई लेगा ? मुझे विश्वास ही नहीं होता।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

आज तक मुझे ऐसा ही लगता है कि कोई अनजान शक्ति मुझे जीते रहने के लिए सहायता दे रही है। सिन्ड्रेला और गोमा को भी ऐसा ही हुआ था। पर मैं तो गोमा नहीं हूँ, सिन्ड्रेला नहीं हूँ। मैं चन्द्र हूँ···चन्द्रलक्ष्मी...चन्द्र और लक्ष्मी। मुझे अपने नाम पर हँसी आ गयी। मैं ऐसा चन्द्र हूँ जो राहु के ग्रास में है और ऐसी लक्ष्मी जो वलिराजा के वंधन में। मैं, चन्द्रलक्ष्मी तो एक नौकरानी हूँ। किचन की प्रेत। पेट भरने के लिए नौकरानी बनी चन्द्र-लक्ष्मी के प्रति मेरे मन में दया की भावना पैदा हो गयी। वे लोग अभी तक नहीं आए। आते ही होंगे। डाइनिंग-टेवुल को यथास्थान रखा। जार में पानी भरा। प्लेट ग्रौर काँटे रख दिये। काश कभी मुझे भी इस तरह ग्रौरों के साथ समानता के आधार पर खाने का मौक़ा मिलता! मैं तो अकेली किचन में खड़ी खाती हूँ। नौकरानी जो हूँ। उसको डाइनिंग-टेवुल पर नहीं खाना चाहिए। उसको...न जाने उसको कितनी चीज़ें नहीं करनी चाहिए। मैं किचन में चली गयी। गेस्ट के आने के समय मेरा ड्राइंग-रूम में अथवा अपने कवूतरखाने में रहना उन लोगों को अच्छा नहीं लगता। किचन साफ करने लग गयी। गैस-स्टोव और फ्रिज साफ किया। किचन में एक नई जान आ गयी। उन्हें आने में देर क्यों हो गयी? कहीं ऐसा तो नहीं कि खाना वाहर ही खा कर आएँ। साहव को वाहर का खाना अच्छा लगता है। अपनी चीज़ से सब तंग आ जाते हैं। मैं वाथ-रूम साफ करने लगी। इन्तज़ार की भी हद होती है। ग्यारह वजने को हैं। मुझे भूख लगने लगी, नींद सताने लगी। कोच में वैठी तो ऊँघ आ गयी। यह भी क्या ज़िंदगी है! इससे तो वैल और गधे की ज़िन्दगी अच्छी है। दरवाज़ा धीरे-धीरे खुला। एक के वाद एक तीनों कमरे में पहुँचे। उल्लास और थकान की छाया कमरे में समा गयी।

—चन्द्र, जल्दी खाना लगाओ। वहुत ज़ोर की भूख लगी है।

मेमसाहिवा की आज्ञा कमरे में गूँज गयी। वे गप्पे हाँक रहे थे। पर मुझे तो खाना लगाना है, वातें नहीं सुननी। वल्कि मीठी-मीठी वातें दर्द को वढ़ाती हैं। यन्त्रवत् खाना टेवुल पर लगा दिया। किचन में जा कर फ्रिज के सहारे उन लोगों की वातें सुनने लगी। ब्रॉडवे का रमझम, रॉकफेलर-सेन्टर पर वर्फ की

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

बहार और रेडियो-सिटी-हाल का शो ! ...मैं इन सबके नज़दीक होते हुए भी कितनी दूर हूँ ! मुझे नींद के साथ-साथ भूख भी सताने लगी। उन लोगों ने अधिक नहीं खाया। भूख की बात बनावटी थी। मैं टेबुल साफ करके किचन में आ कर खाने लगी। कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। ड्राइंग-रूम में तो बातों की बहार छाईहुई थी। खाना खा कर बर्तन साफ करने के बाद जब बाहर निकली तो एक गहन नीरवता छा चुकी थी। धीमे प्रकाश ने इतना बताया कि उनके दोस्त बाहर कोच पर ही सो गये हैं। मैं भी थक गयी थी। अपने छोटे-से संसार में चली गयी। पता नहीं, रात्रि का कौन-सा पहर था—मेरी आँखें किसी डरावने सपने के कारण खुल गयीं। सपने में क्या देखा, याद नहीं रहा। चारों ओर अँधेरा होने के कारण मैं यह भी न सोच सकी कि मैं कहाँ हूँ। लगता था कि साँस रुक जाएगी। शरीर पसीने से तरबतर हो गया। गुमसुम वातावरण से मैं विचलित हो उठी। किसी तरह मैं बाहर आ ही गयी। मुझे पता लग गया कि मैं कहाँ हूँ। कमरे के अन्दर साहब के दोस्त की साँस चलनेकीआवाज़आ रही थी। मैं वाश-रूम में गयी। वहाँ भी उनकी साँस मेरा पीछा कर रही थी। मैंने लाईट ऑन की। वाश-रूम में मैं अकेली थी। शीशे पर पड़ा मेरा प्रतिबिम्ब मुझे घूर कर देखने लगा। मैं अपने को पहचानने लगी, सचमुच मैं यहाँ आकर काफी बदल चुकी हूँ। मैं अपने कमरे में चली गयी और फिर अंधकार छा गया। वहाँ अब किसी की साँस की आवाज़ न थी। शायद वे मुझे देख रहे हों। मैंने भी उनकी ओर देखा। मुझे लगा कि उनकी आँखें मेरी ओर आने लगी हैं। मैं झट से अपने कमरे में चली गयी। आने दो उनको...मेरा क्या कर लेंगे। पर एक मन ने कहा कि वे आएँ तो अच्छा है। मैंने किवाड़ बन्द नहीं किये। वे नहीं आए। मुझे उनको उठा कर अपनी कहानी कहने की इच्छा हुई। शायद उनको नींद नहीं आ रही है। नई जगह जल्दी नींद नहीं आती। अगर आ भी गयी तो बीच-बीच में उखड़ जाती है। परिवार की याद आ रही होगी। बीवी से, बाल-बच्चों से मिलने को जी मचल रहा होगा !

बिस्तर मुझे सोने का लालच दे रहा था पर नींद की इच्छा नहीं थी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

पिताजी की चिट्ठी क्यों नहीं आती ? सुनती हूँ कि पिताजी ने मेरी शादी की बात चला दी है। मैं लजा गयी पर मेरा मन मुस्कराने लगा। पर मैं यहाँ से जा कैसे पाऊँगी ? वे लोग तो मुझे किसी भी हालत में न जाने देंगे। जाकर भी क्या करूँगी ? मैं तो परिवार के लिए भार बन जाऊँगी। इस-लिए कभी-कभी मुझे डर लगता है कि कहीं वे लोग मुझे जाने के लिए न कह दें। किसी पर भार बनने की बजाय तो मुझे दासी बने रहना ही अच्छा लगता है। अभी तो मैं एक सराय हूँ। घटनाएँ आती हैं, चली जाती हैं। कोई भी घटना मुझे नहीं अपनाती। सराय में भी कोई सदा के लिए नहीं बसता। सराय किसी की अपनी नहीं होती। इतने विशाल देश में भी मैं प्रसन्न नहीं हूँ। मैं तो अजीब किस्म की नारी हूँ। हाँ जी, अब मैं बच्ची नहीं हूँ। फ्रॉक के अन्दर मेरा शरीर विरोध करने लगा है। मुझे अब साड़ी पहनने की बहुत इच्छा होती है। दो साड़ियाँ तो मेमसाहिबा ने भी दी हैं, पर संकोच के कारण मैं नही पहनती। पहन कर भी क्या करना है ? मैं कहीं जाती तो हूँ नहीं। मुझे उसी क्षण साड़ी पहनने की आकांक्षा हुई। उसे पहन कर कमरे के बाहर ड्राइंग-रूम में जाने को जी चाहा। आज कमरा अकेला नहीं है। वहाँ एक पुरुष सो रहा है। मैं यह क्या सोच रही हूँ ? क्या इस तरह मन को बेक़ाबू करना अच्छा है ? मैं सहम गयी। दरवाज़ा खुला था। पता नहीं क्या टाइम हुआ है ? मेरे पास तो घड़ी भी नहीं है। साहब तो खरीद देना चाहते थे, पर मेमसाहिबा को यह अच्छा नहीं लगा कि कहीं घड़ी पा जाने पर मेरा दिमाग न चढ़ जाए। मेरा मानव बनना उन्हें पसन्द नहीं। मुझे मालूम है कि एक भय हमेशा उनका पीछा करता रहता है कि कहीं मैं जीवन पा कर उनका जीवन हथिया न लूँ। यदा-कदा उनकी शंका, मन का पाप बात-बात में दिखता है। इस पर मुझे मज़ा आता था। कभी-कभी मेरा बिगड़ा मन और सताया जीवन तड़प कर चीख उठता कि एक बार उनकी शंका सत्य में परिवर्तित हो जाए। तब मुझे संतोष होगा। आज मुझे क्या हो गया है ? यह मन बार-बार पाप करने को तुल जाता है। मुझे अपने को इस तरह बहकाना अच्छा नहीं लगा। पर मेमसाहिबा की शंका मेरे मन

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

पर घिर गयी। बात उन दिनों की है जब मेमसाहिबा के अल्सर का आपरेशन हुआ था। साहब सुबह से ही अस्पताल गये हुए थे। उस दिन जेनी बहुत दिनों के बाद आई थी। मेमसाहिबा के कड़वे व्यवहार ने उन्हें दुख पहुँचाया जिसका कारण मैं थी। जेनी की भूल थी कि वह मुझे बहुत स्नेह करती है। और उनको मेरे प्रति जेनी की ममता असह्यहो गयी। एक दिन मुझसे कहने लगीं—'देखो, जेनी से फोन पर बात मत करना, वह अच्छी औरत नहीं है।' जब वे दोनों नहीं थे तो जेनी ने मुझें बहुत प्यार किया। मैंने कुछ न कहा पर वह मेरे दिल की बात समझती थी। मुझे साफ रहने के लिए कहने लगी। उसके कहने पर मैंने अपने को खूब सँवारा। मेमसाहिबा की क्रीम और पाउडर भी लगा लिया। बाल जेनी ने सँवार दिये। मुझे कुछ क्षण के लिए जीवन मिला। शीशे में अपने को देख कर मैं स्वयं विस्मित रह गयी। उस समय मुझे पता लगा कि मेमसाहिबा को मुझसे क्यों भय लगता है। मैं सचमुच सुन्दर नारी में बदल चुकी थी। रात के पहले पहर में ही जेनी चली गयी। पता नहीं मेमसाहिबा के आपरेशन का क्या हुआ? फोन भी नहीं आया? साहब अभी तक नहीं आए। शायद...मैं खाना बनाने लगी। मन की उमंगों ने संगीत का रूप ले लिया। मैं गुनगुनाने लगी। मुझे अपने से प्यार होने लगा। ज़ीने की इच्छा प्रबल हो उठी।

जब साहब आए तो ग्यारह बज चुके थे। वे बेहद परेशान नज़र आ रहे थे। वह कुछ न बोले परन्तु उन्होंने मेरे चेहरे को बहुत बार ध्यान से देखा। शायद गुस्सा करें। मैं डर गयी, पर उन्होंने कुछ नहीं कहा। खाना खा कर चुपचाप बैड-रूम में चले गये। अभी मैं सोने की कोशिश कर ही रही थी कि मुझे ऐसा लगा कोई दरवाज़े पर खड़ा है। अंधकार के कारण मैं पहचानने में असफल थी। पर साहब के सिवाय घर में उस दिन कोई नहीं था। शायद उनके मन में पापआ गया हो। खाते समय भी घूर-घूर कर देख रहे थे और उस दिन तो मैं भी खूब सँवरी हुई थी। किसी और काम से आए होंगे। कहीं अकेले में डर तो नहीं गये? पर चोरों की तरह चुपचाप क्यों खड़े हैं, बोलते क्यों नहीं? अगर मुझ पर उनकी कुदृष्टि थी तो आज

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

ही क्यों...फिर विदेश में मैं कर भी क्या सकती थी ? एक नौकरानी की इच्छा का सवाल ही नहीं उठता। वह तो अपने मालिक के इशारों पर चलती है। पता नहीं क्या सोच कर वह छाया लोप हो गयी। मुझे डर लगा कि आज कहीं साहब के दोस्त की भी ऐसी अवस्था न हो। पर आज मैं बनी-ठनी नहीं हूँ। फिर भी मर्दों का क्या भरोसा ? मैं तो अपने पूर्ण यौवन पर गुज़रती हुई एक नारी हूँ और नारी के इस दमकते रूप और भड़कते यौवन के लिए सभी मर्द पशु हो जाते हैं। मुझे पशु की नहीं, पुरुष की आवश्यकता है। पशु—पुरुष! पुरुष—पशु! मैंने किवाड़ की चिटकनी लगा दी।

जब मेरी आँख खुली तो सवेरा हो चुका था। ड्राइंग-रूम खाली था। वाश-रूम की लाइट जली हुई थी। बैड-रूम से केवल साँसों की ध्वनि आ रही थी। मैं जल्दी-जल्दी ड्राइंग-रूम साफ करने लगी : आज शनिवार था। सड़कों पर मुर्दनी-सी छाई हुई थी। इक्का-दुक्का लोग और कुछ गाड़ियाँ ही दिखाई दे रही थीं। आकाश भी धरती पर लेट-सा गया था। इसकी गति में और दिनों की तरह घबराहट न थी। साहब के दोस्त के निकलते ही मैं वाश-रूम में चली गयी। मुझे सब-कुछ जल्दी ही करना पड़ताहै। उन लोगों के उठ जाने पर अगर मैं वाशरूम में रहूँ तो मुझे झिड़कियाँ सुननी पड़ती हैं। मैं एक नौकरानी, एक मशीन। मेरा कोई समय नहीं। मुझे तो औरों के इशारों पर चलना पड़ता है। मेरी क़िस्मत में यही लिखा है। कभी-कभी तो मेरे मन में शंका उठती है कि क्या मुझ जैसी नौकरानी का भी भाग्य होना है। बैड-रूम से आवाज़ आने लगी। मैं बाहर चली आई।

ब्रेकफास्ट तैयार हो गया। कमरे में मीठी-मीठी बातें उभरने लगीं। अपने देश और समाज की बातें हमेशा ही मीठी होती हैं। मुझे ये बातें सुनने को मिल जाती हैं यही काफी है, क्योंकि नौकरानी से कोई बात नहीं करता। एक नौकरानी को अपने देश से प्यार और ममता नहीं हो सकती क्योंकि उसका मालिक ही उसके लिए देश भी है, समाज भी। बातों ही बातों में शॉपिंग की बात चल पड़ी। उनके दोस्त को अपनी पत्नी के लिए कुछ साड़ियाँ खरीदनी थीं। अच्छा, तो ये विवाहित हैं। इतने अर्से तक

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

विदेश में अकेले कैसे रहे होंगे ? उनकी बातों से मुझे मालूम हो गया कि वे मेरी स्कूल की सहेली के पति हैं। मुझे जा कर उनसे कहने की इच्छा हुई कि आपकी पत्नी मेरे साथ पढ़ी थीं। पर अब तो दुर्गा और मुझ में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। वह एक अफसर की पत्नी और मैं एक अफसर की नौकरानी। काश मेरी मीत-माँ (धर्म की सहेली की माँ) को मेरे परिवार पर दया न आई होती ! मेरे साहब उनकी ननद के लड़के हैं और उनके कहने पर ही मैं यहाँ आई हूँ। किसने सोचा था कि लिंकन के देश में मुझे दासी बन कर रहना होगा ! कितने ख्वाब देखे थे परन्तु यहाँ आ कर मेरा सारा उत्साह, सारी उमंग लुप्त हो गयी है। वे लोग खा रहे थे। मेरी उपस्थिति का वहाँ कोई मूल्य न था। मैं अपने कबूतरखाने में गयी और एक पुराना गोरखा-पत्र देखने लगी। वह बहुत पुराना था, फिर भी मुझसे नया।

साहब ने मुझे पुकारा। मैं झट से बाहर निकल आई। शायद गुस्सा हो गये हैं क्योंकि मैं सेवा में खड़ी न रह कर अन्दर चली गयी थी।

—देखो चंद्र, लंच हम लोग बाहर ही खाएँगे, लेकिन बना कर घर से ही ले जाएँगे। तुमको भी हमारे साथ चलना है।

कहीं मैं सपना तो नहीं देख रही ! उन लोगों का नम्रता-भरा यह व्यवहार ! क्या उन लोगों की मति तो नहीं फिर गयी ? मेरी दृष्टि उनके दोस्त पर पड़ी जो मेमसाहिबा से बातें करने में बड़ा मज़ा ले रहा था। अच्छा, तो अब समझी। उन्हें अपने दोस्त को दिखाना है कि हम अपनी नौकरानी को कितने प्यार से रखते हैं। कुछ भी हो, मैं इस चार-दीवारी के बाहर तो जा पाऊँगी। खुली हवा में साँस लेने का मौक़ा तो मिलेगा। मन खुशी से पागल हो उठा। तीनों कुछ देर बाद बाहर चले गये। कुछ देर मैं भी अनमनी-सी रही। मुझे विश्वास नहीं होता था। क्या सचमुच मैं भी उन लोगों के साथ जाऊँगी ? इसी समय किचन के अन्दर से बैल की आवाज़ आई। डोर मैन कुछ कहना चाहता था। जा कर देखा पर कोई खास बात नहीं थी।

ग्यारह बजे के क़रीब हम लोग बस में चढ़ चुके थे। एक नया नज़ारा था। जब कभी मैं ध्यान से बाहर देखती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

विदेश में नहीं हूँ बल्कि इन पहाड़ियों के बीच से मेरा शहर निकल पड़ेगा। पर बस में बैठे लोगों की भाषा और उनके चेहरे मेरे विचारों परतुषारपात कर देते थे। आखिर हम गंतव्य स्थान पर पहुँच गये। काफी ठंड थी। 'स्की' करने वालों का बाज़ार गर्म था। लंच के लिए हम वन की ओर चल पड़े। मानव मानव को खा रहा था। पुरुष नारी को एक खिलौना मात्र समझता है। जीवन की परिभाषा भी कितनी अजीब है ! इन सबको देख कर मेरा सिर शर्म से झुक जाता है। मृत्यु को जीवन से सदा लज्जा लगती रही है। खुले वातावरण में मेरा दम घुटने लगा। मुझे अपने पर गुस्सा आ गया : मैं कैसी हूँ ! कमरे के अन्दर रहना भी अच्छा नहीं लगता और घूमने से भी घबराती हूँ ! मेरे सिर में दर्द होने लगा। मैं जल्दी से जल्दी अपने बंद कमरे में आ जाना चाहती थी। लेकिन नौकरानी की इच्छा का क्या मूल्य ? मैं जाने के लिए कह भी नहीं सकती। लौटने के लिए जब बस पर चढ़े तो मुझे लगा कि एक बहुत बड़ी विपत्ति टल गयी है।

घर पहुँचते ही वे तीनों मार्केट चले गये। साहब के दोस्त की बीवी—हाँ जी, मेरी सहेली के लिए साड़ियाँ खरीदनी थीं। इसीलिए तो मेम-साहिबा भी साथ गयी हैं। काश, मेरी भी शादी हुई होती और इतनी मिन्नतें करके कोई मेरे लिए भी साड़ियाँ खरीद कर लाता ! मैंने अपने को ज़ोर से तमाचा मारा। एक नौकरानी की यह बदतमीज़ी—यह हिम्मत ! पर विरोधहो गया। ग़ज़ब का हादसा घट गया। मैं कहाँ की नौकरानी हूँ ? मैं काम करती हूँ। किसी के कहने से मैं नौकरानी कैसे हो सकती हूँ ? मेरी भी शादी होगी और तब मुझे कौन नौकरानी कहेगा ? मैं नौकरानी नहीं, एक मानव हूँ। मानव को जनने वाली नारी-माँ। पर क्या यह संभव है ? क्या मैं अपने देश फिर जा पाऊँगी ? क्या वे लोग मुझे जाने देंगे ? आखिर उन्हें भी तो जाना है। हाँ जी, तब तो यह संभव ही नहीं है। अपने देश की याद ने मुझे चंचल बना दिया। मेरी हालत ऐसे पक्षी की तरह हो गयी जिसको पिंजरा पसन्द भी है और नहीं भी। अनायास मेरे कानों में एक गीत की ध्वनि गूँजने लगी —

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

जीवन देखि धरै धरै नै थाकेर,
म मुर्दा भएको तिमी आज हेर।
यों ढुंगाले गर्छ ईश्वर को अभिनय
यों कुकुरले गर्छ मान्छे को अभिनय
कल्लाई मान्छे भन्ने कल्लाई भन्ने
यों परिभाषा आज च्याति एको हेर
म मुर्दा भए को तिमी आज हेर।

[जीवन से बहुत बहुत थक कर
मैं मुर्दा हो गया हूँ तुम आज देखो।
यह पत्थर करता है ईश्वर का अभिनय
यह कुत्ता करता है मनुष्य का अभिनय
किसको मनुष्य कहूँ किसको देवता कहूँ
इस परिभाषा को आज फटा हुआ देखो
मैं मुर्दा हो गया हूँ तुम आज देखो।]

सचमुच मैं एक ज़िन्दा लाश हूँ। मैं अपनी लाश को ढो रही हूँ। अपनी मौत पर मैं स्वयं मातम मना रही हूँ। मैं ही इसका दाह-संस्कार करूँगी। मैं ही इसका श्राद्ध करूँगी। मैं तो रोज़ ही अपनी लाश का श्राद्ध करती हूँ। मैं जीते जी मर चुकी हूँ। मैं अपने को क्या कहूँ—मनुष्य, प्रेत, अगति ? मैं कुछ नहीं जानती। मैं कुछ नहीं हूँ। मैं गोमा हूँ—में सिन्ड्रेला हूँ। नहीं नहीं, मैं गोमा नहीं हूँ—मैं सिन्ड्रेला भी नहीं हूँ। मैं तो चन्द्रलक्ष्मी हूँ। चन्द्र... लक्ष्मी। मुझे तो अपने नाम पर रोना आ जाता है। मैं एक झटके से फोन के पास चली गयी। रिसीवर उठाया और बोलने लगी—

हैलो, हैलो। हाँ जी, मैं गोमा हूँ। मैं सिन्ड्रेला हूँ। मैं चन्द्रलक्ष्मी। भाग्य द्वारा सतायी गयी एक अवला। काम करने के लिए जीने वाली एक नारी। अपने पिता की चिन्ता का कारण, एक कन्या। इससे बढ़ कर सबकी चाकरी करने वाली एक दासी, एक सराय। गोमा! सिन्ड्रेला!! चन्द्र-लक्ष्मी!!! एक दासी : एक सराय।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

चार

बर्फ की जगह धरती पर हरी-हरी घास फैली हुई है। वातावरण प्रसन्नता से गुजर कर विरह-गीत गाने लगा है। परन्तु मेरा भाग्य मन्द-मन्द गति से पुरानी लीक पर ही चल रहा है। मैं जेनी के आने का इन्तज़ार कर रही थी। हाँ, आज जेनी मुझे अपने घर ले जाएगी क्योंकि वे लोग कुछ दिनों के लिए बाहर गये हुए हैं। पता नहीं क्यों, जिस जेनी का मुझसे लगाव होना उन्हें अच्छा नहीं लगता उसी जेनी से अपने घर ले जाने को कह गये थे। जेनी की छाया में रख कर शायद मुझे एक सीमा में रखना चाहते हैं। शायद उन लोगों ने मेरे विचार जान लिये हों। इसीलिए तो मुझे बहलाने के लिए यह छूट दी गयी है। जेनी अभी तक नहीं आई थी। मुझे फोन करने की इच्छा हुई। परन्तु वह तो आती ही होगी। इतनी दूर से आना है। हो सकता है कि बीच में कोई काम आ गया हो। जेनी के जीवन में भी संघर्ष भरा पड़ा है। उसकी व्यथा भी मेरी तरह ही है। उसका जीवन एक करुण कथा से गूँथा हुआ है। अगर कोई उसे कुमारी कहे तो वह प्रसन्नता के मारे बेहाल हो जाती है। वास्तव में वह दो जवान बेटियों की माँ है। पति के होते हुए भी वह अकेली है। मैंने न तो कभी उसकी व्यथा पूछी और न उसने कहने की आवश्यकता ही समझी। उसके जीवन में एक ही धुन, एक ही चिन्ता है—वह है कमाने की। जीवन के लिए नहीं, मृत्यु के बाद के लिए, कब्र के लिए। कैसी विचित्र दुनिया है...!

डोर-बैल की आवाज़ ने जेनी के आगमन की सूचना दी। मैंने दरवाज़ा खोल दिया। अन्दर आते ही उसने मुझे ममतापूर्ण आलिंगन में लेकर चूम लिया। उसने मुझे एक कंघी अपने बैग से निकाल कर दी। मैं तो तैयार थी ही। उसके घर की ओर चल पड़े।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

खुले वातावरण में पहुँच कर मुझे एक झटका लगा। काश, इस तरह मैं रोज़ घूमने निकलती ! शनिवार के नशे में सड़क अभी भी ऊँघ रही थी। दूसरे दिनों की अपेक्षा चहल-पहल कम थी। फिर भी जिसे मैं दूर से देखती उसके नज़दीक पहुँच कर मैं भाव-विभोर हो जाती थी। जेनी मुझे 'सब-वे' के टर्मीनल पर ले गयी। मेराशरीर और मन इस नए वातावरण में सिकुड़ता चला गया। इस नए संसार में मेरी झिझक बढ़ने लगी। मुझे डर लगा कि कहीं इस भीड़ में मैं जेनी से बिछूड़ न जाऊँ। आखिर हमारी 'सब-वे' ट्रेन आ गयी। चढ़ने के बाद मेरा भय जाता रहा। अब मैं जेनी के साथ थी। एक नए समाज को देखने के लिए मैं उन लोगों के जेल-रूपी कमरे से दूर जा रही थी। गाड़ी की चाल तेज़ होती गयी। जब कभी लाइट ऑफ हो जाती तो मेरा माथा ठनक जाता। भय के कारण चेहरे पर पसीने की बूंदें बिखर गयीं। भय तो मेरी नस-नस में समा गया है। जेनी अखबार पढ़ने में मस्त थी। मैंने अपने चारों ओर दृष्टि घुमा कर अपना दिल बहलाने की कोशिश की। लाटरी का विज्ञापन लुभावनी आँखों से इशारा कर रहा था। मैंने अपने चारों ओर देखा। ऐसा लगा कि डॉलर के देश के ये लोग भूखे हैं। यह क्या ? लिंकन के देश में भी ऐसा होता है—एक गोरी बूढ़ी के साथ एक नीग्रो के बैठने पर वह उठ कर एक ओर खिसक गयी। एक जनाब उपन्यास में खोये हुए थे। एक जगह एक युवक और एक युवती का शरीर उस भीड़ में भी काफी उलझ चुका था। मैंने आँखें फेर लीं। ये लोग कैसे हैं ! गाड़ी को भी बन्द कमरा समझते हैं। पता नहीं क्यों, मुझे अपने देश की गलियों के कुत्ते याद आ गये। स्टेशन पर स्टेशन निकलते जा रहे थे। जेनी ऊँघने लगी। वह भूल ही गयी कि मैं भी उसके साथ हूँ। हाँ जी, इस देश में कोई किसी को याद नहीं रखता। अपने काम और अपने स्वार्थ में ही उलझे रहते हैं। 'सब-वे' की गाड़ी एकाएक अन्धकार से प्रकाश में आ गयी। गाड़ी नदी के दो किनारों को मिलाने वाले पुल पर से गुजरने लगी। 'स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी' सागर की लहरों में कभी दिखता और कभी खो जाता ! फिर अंधकार घिर गया। ऐसा लगा कि गाड़ी पिंजड़े में बंद हो गयी है, पर मेरे

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

कमरे-रूपी पिंजड़े की तरह यहाँ अकेलापन नहीं था। सूनेपन की उदासी नहीं छाई हुई थी। यहाँ तो हलचल थी, जीवन था। गाड़ी के अन्दर अब गोरों से अधिक कालों की संख्या रह गयी थी। लोगों की संख्या कम होने पर गाड़ी में बिखरी गन्दगी उभरने लगी। बादाम के छिलके, सिगरेट के टुकड़े, कागज, और एक जगह तो किसी ने कै भी कर दी थी। अब गाड़ी प्रकाश में आ गयी थी। दोनों ओर बस्तियाँ फैली हुई थीं। जेनी ने मुझे सजग किया कि हमें अगले स्टेशन पर उतरना है। मुझे कब अपने देश पहुँचने का संकेत मिलेगा! वह दिन कब आएगा! मैं अपने देश के विषय में इतना क्यों सोचती हूँ? क्यों मैं इतनी विकल हो जाती हूँ—भावुक हो जाती हूँ? 'सब-वे' की गाड़ी रुकी। विचार और भावना कटकर रह गयी। मैं भी जेनी के साथ उतर पड़ी। आकाश में बादल छाये हुए थे। ठंडी-ठंडी हवा भी चल रही थी। इलाक़ा मनोरम था। घर छोटे-छोटे थे। बच्चे सड़कों पर खेल रहे थे। मूल सड़क से एक गली बाईं ओर घूम गयी। जेनी का घर आ गया। बेटियाँ घर पर नहीं थीं। एक अपने 'बॉस' के साथ सैन-फ्रान्सिस्को गयी हुई थी और दूसरी अपने ब्वॉय-फ्रेण्ड के साथ कोनी टापू पर शनिवार का आनन्द लेने। कमरे में पहुँच कर पता चला कि सामने से छोटा दिखने पर भी कमरा काफी बड़ा और फैला हुआ है। मुझे ड्राइंग-रूम में बिठाया गया। वहाँ कुछ पुराने कोच, घिसी हुई कुर्सी व टेबुल पड़े थे। उसके आगे एक गली-सी थी जो बेड-रूम को जाती थी और एक तरफ किचन और बाथ-रूम था। जेनी सीधे अन्दर चली गयी। साइड-टेबुल पर 'हेयर-स्टाइल' पर छपी एक मैगज़ीन रखी हुई थी। विचारों से बचने के लिए मैंने मैगज़ीन देखना शुरू कर दिया। पर मुझे इसे देखने की क्या ज़रूरत है? मुझे इस तरह केश नहीं सँवारने हैं। मैं तो एक नौकरानी हूँ! मेरे मन में एक हलचल हुई। कहाँ जाऊँ—किधर जाऊँ की भावना प्रबल हो उठी। खिड़की पर जा कर बाहर का दृश्य देखने को मन चाहा पर वहाँ कोई ऐसी खिड़की ही न थी जो सड़की की ओर खुलती हो। मेरा दम घुटने लगा। पता नहीं, जेनी कैसे इस कमरे में रहती होगी! चारों ओर

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

दीवारों से घिरा हुआ यह कमरा अपने में एक टापू था।

—तुम तो बोर हो गयी होगी। माफ करना। चलो अब लंच करें।

जेनी के इस कथन से मेरी जान में जान आ गयी। उस दिन का लंच एक छोटे-से टेबुल पर शुरू हुआ।

—चन्द्र, तुमने पढ़ना शुरू कर दिया है कि नहीं? पढ़ना तो बहुत ज़रूरी है। चाहे कुछ भी पढ़ो। इससे तुम्हारी जानकारी बढ़ेगी।

मैं क्या जवाब देती! उसको क्या पता कि नौकरानियों को पढ़ने का अधिकार नहीं होता। उन्हें ज्ञान से वंचित रखना आवश्यक समझा जाता है। मैं उस दिन उसे अपनी व्यथा सुनाना चाहती थी, पर कहने का मुझमें साहस नहीं था। दुविधा ने मुझे कहीं का न रखा। जेनी को भी अपनी कथा कहनी थी। मैं सुनने लगी। उसमें साहस था, दुविधा न थी। उसकी एक बेटी अपने 'बॉस' की चहेती थी। जब कभी किसी काम से वह शहर से बाहर जाते तो उसी को साथ ले जाते। उपहार भी काफी देते हैं। टेलिविज़न भी उन्हीं ने उपहार में दिया है। दूसरी लड़की ज़रा चंचल और नटखट है, पर है बड़ी चालाक। वह कमाती भी अधिक है। सुन्दर होने के कारण बहुत-से पुरुष उससे शादी करने को तैयार हैं। वह सबको अपने इशारों पर नचा रही है। जिस मर्द के साथ वह कोनी टापू में गयी है वह तो एक डाक्टर है। कितना स्वतन्त्र समाज है!

—चन्द्र, तुमने कोनी टापू देखा है?

—नहीं।—मैंने छोटा-सा उत्तर दिया। मेरे मन में एक आशा की किरण प्रस्फुटित हुई। जेनी ने मुझसे इस टापू को दिखाने का वायदा किया। इनके यहाँ लंच भी कितनी जल्दी खत्म हो जाता है! मेरा आधा पेट भी नहीं भरा था। इतना कमाते हैं, पर करते क्या हैं? खाना तो न के बराबर है। दोनों ने मिल कर टेबुल से प्लेट आदि उठायीं औरसाफ कीं। मैंने सोचा कि अब तो उस कमरे सेबाहर जाने को मिलेगा। कोनी टापू परजाने से भी अधिक मेरी उत्सुकता कमरे से बाहर चलने में थी लेकिन जेनी तो अपने संसार में मग्न थी। उसको तो उसी कमरे के अंदर कुछ दिखाने की इच्छा

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

थी। वह एक सूटकेस उठा लायी। उसकी दूसरी लड़की घुड़सवारी करती थी। उसने मुझे उसकी जीती हुई ट्राफी दिखायी। उसके बाद टेबुल-डायरी-सा ट्रांज़िस्टर, विभिन्न प्रकार की मँहगी ड्रेसें और घड़ियाँ जो विभिन्न पुरुष-दोस्तों ने उसकी बेटी को उपहार में दी थीं। जेनी गर्व से कहने लगी—

—मेरी छोटी बेटी बहुत चालाक है। अपने पुरुष दोस्तों के लिए काफी मँहगी पड़ती है।

मैं आश्चर्य से जेनी को देख रही थी। एक माँ अपनी बेटी के विषय में ऐसी बात कहकर कितना गौरव महसूस कर रही थी। पता नहीं, यह नारी-जाति की अवहेलना है या कद्र ! उसके प्रेम का भी मूल्य आँका जाता है। प्रत्येक उपहार प्रत्येक प्रेमी का प्रतीक था। प्रेमी—उपहार ! मेरा सिर चकराने लगा। मैं तो कभी ऐसा न करूँगी। मुझे उपहार नहीं, एक पुरुष चाहिए। जिसको मैं अपना सारा प्यार—स्नेह अर्पण कर सकूँ। जेनी उपहारों से भरा सूटकेस लेकर अन्दर चली गयी। वहाँ केवल तस्वीरों का एक बंडल रह गया था। जेनी की लड़की विभिन्न पुरुष-दोस्तों के साथ थी। सभी पुरुष सुन्दर और स्वस्थ थे। जेनी की लड़की भी काफी सुन्दर और आकर्षक थी। मैं सोचने लगी, अगर जेनी की लड़की विभिन्न तस्वीरों में न हो कर विभिन्न लड़कियाँ विभिन्न तस्वीरों में विभिन्न पुरुषों के साथ होतीं तो कितना मज़ा आता। मेरा संस्कार मुझे बाँध रहा था। मेरी तबियत बहकने लगी : यहाँ तो पुरुष नारी के लिए ट्रॉफी मात्र है, पर मेरे समाज में भी तो नारी पुरुष का खिलौना मात्र है। पुरुष नारी को अपना स्वार्थ पूर्ण करने का साधन समझता है। प्रत्येक समाज की अपनी मान्यता और अपनी परम्परा होती है।

जब हम 'सब-वे' की गाड़ी पर चढ़ कर कोनी टापू पहुँचे तो बारिश हो रही थी। हवा भी चल रही थी। रेस्टुराँ में जाकर हमने एक-एक 'पीजा' खाया। जेनी के परिचित लोग भी वहाँ आए हुए थे। वह मुझे इन लोगों के बीच छोड़ कर इधर-उधर चली जाती। मुझे तो उस से बिछुड़ जाने का भय लगा रहा, पर जेनी मुझे लोगों से हिल-मिल जाने का मौक़ा देना चाहती

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

थी। इसलिए मैं सतर्क थीं। बातें नहीं करती थी। मुझे अपने संकोच पर लज्जा आ गयी। जेनी एक ग्रुप में जा कर बातें करने में मस्त थी। कुछ युवक मुझ से भी बातें कर रहे थे परन्तु मैं खुल नहीं पा रही थी। मन तो चंचल होता था परन्तु संस्कार ऐसा करने से धमका देता था। मुझे अपनी एक सहेली की याद आ गयी जिसकी भावनाएँ बड़ी कट्टर थीं। वह पुरुष और नारी के सम्बन्ध में एक आदर्श को महत्त्व देती थी परन्तु उसका मन भी अकेले में, समाज के अनदेखे में चंचल होता था, मचलता था। टेलिफोन पर किसी पुरुष की आवाज़ में मज़ाक मिल जाए तो काफ़ी देर हँसती रहती थी। आफिस में कोई युवक आ कर बातें करने लगे तो काम भी भूल जाती। मैं भी ऐसे ही संस्कार में पली थी। मेरा संकोच जल्दी ही दूर हो गया। युवकों की बातों पर मेरा जीवन थिरकने लगा। वारिश रुक चुकी थी। निर्भय हो कर मैं उनके साथ बाहर चली गयी। मैं जानती थी कि जेनी की आँखे सतर्क हैं और मेरी रखवाली कर रही हैं। एम्पोरियम आदि देखने के बाद हम समुद्र के किनारे पहुँच गये। समुद्र लहरों की विह्वलता से घिरा पड़ा था। इन तरंगों ने मेरे मन को चंचल कर दिया, मेरे विचारों को तरंगित कर दिया। मैंने सोचा कि उस पार मेरा देश होगा। मेरी धरती मेरी बाट जोह रही होगी। एक जहाज़ की ओर संकेत करके किसी ने कहा कि यह एशिया जा रहा है। धूमिल आकाश में क्षण-क्षण में जेट के उड़ने की आवाज़ आ रही थी। मुझे उसी क्षण जहाज़ में चढ़ कर विमान में उड़ कर अपने देश जाने की इच्छा हुई। पर जा कर भी क्या करूँगी ! क्या मेरा देश, मेरा समाज पहले की तरह स्वागत करेगा ? अभी पिताजी ने उसी दिन लिखा था कि अपने चरित्र का ख्याल रखना। शायद किसी ने मेरे विषय में ऐसी-वैसी बातें फैला दी हों। साहब के साथ मेरा सम्बन्ध तो मेमसाहिबा के अस्पताल में रहते समय हो गया था। सचमुच नारी का जीवन भी कैसा होता है! मुझे अपनी सहेली उर्मिला की एक भयानक घटना याद आ गयी। बात यों हुई कि उर्मिला ने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् एक आफिस में टाइपिस्ट की नौकरी कर ली। वह सबसे हँस कर बातें करती थी लेकिन

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

इसको उसके होने वाले पति ने ग़लत समझा और उर्मिला के चरित्र को बुरा-भला कहा। इसके बाद भयानक घटना घट गयी। उर्मिला अपने चरित्र पर लगे कलंक को सहन न कर सकी और उसने आत्महत्या कर ली। परन्तु इस घटना के पश्चात् उस पुरुष को एक धक्का लगा, वह विक्षिप्त हो गया। और दो जीवन यों ही बर्बाद हो गये।

—चन्द्र, तुम किन विचारों में खो गयी हो?

जेनी के ये शब्द मानो मैंने सुने ही नहीं। अब कोई पुरुष मुझ पर विश्वास नहीं करेगा। शायद मेरा समाज मेरी शादी के सपने को कभी पूर्ण न होने देगा। अपने चारों तरफ फैली समुद्र की लहरों में मैं कभी उर्मिला की लाश देखती और कभी अपना चेहरा और इसके साथ ही एक पुरुष आकाश से बातें करता हुआ उसी जल में विलीन हो जाता। तब मुझे पता चला कि मेरी हत्या तो उसी दिन हो चुकी है जब मैंने किसी पराए की नौकरी करने की बात मान ली थी।

—चन्द्र, तुम्हें क्या हो गया है? मेरी बेटी पेगी से मिलो।

मैं एकाएक सत्य के संसार में पहुँच गई। मैंने लहरों से अपनी नजरें उठाकर जेनी की तरफ देखा। मुझे साथ लाने वाले युवक युवतियों से जोड़ी बना कर इधर-उधर बिखरे हुए थे। पेगी, जेनी की बेटी सुन्दर थी और उसके साथ ही एक अधेड़ उम्र का पुरुष खड़ा था। शायद यही उसका सबसे नया पुरुष-दोस्त—डाक्टर होगा। परिचय हुआ। परन्तु मेरा मन उस दिन डूबा जा रहा था। अपने देश लौटने की चाहना से नहीं, अपितु मेरा देश मुझे नहीं अपनाएगा, इस भय से मैं पिसी जा रही थी। पेगी और उसका ब्वॉय-फ्रेंड मुझ से उकता कर वातावरण में रमने और मज़ा लेने चले गये। जेनी मेरी चुप्पी से चिन्तित हो गयी और हम 'सब-वे' स्टेशन की ओर चल पड़े। आकाश के रंग से समय जानना कठिन था। पानी का बरसना कम हो गया था।

जब हम अपने घर के नजदीक के 'सब-वे' टर्मिनल पर पहुँचे तो संध्या घनी हो चुकी थी। रात धीरे-धीरे पूर्व दिशा में अपना जाल फैला चुकी थी। काफी तादाद में लोग 'ईवनिंग न्यूज़' खरीद रहे थे। एक ओर काले कपड़ों

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

में एक 'नन' मौन भाषा में पैसा माँग रही थी। बग़ल में ही एक व्यक्ति जिसका एक हाथ और एक पैर नहीं था, सामने कपड़ा बिछा कर भीख माँग रहा था। हम टर्मिनल से निकल कर अपने घर की ओर जाने वाली सड़क पर आ गये। जेनी से बस के भाड़े के लिए एक युवक ने बीस सेन्ट माँगे। जेनी ने दे दिये। अच्छा, तो यहाँ भी माँगने पर मिल जाता है। जब मनुष्य के माँगने पर मनुष्य दे देता है तो अवश्य ही यहाँ ईश्वर से माँगने पर बहुत-कुछ मिलता होगा। परन्तु मुझे किसी से कुछ माँगने की इच्छा न रह गयी थी। कोनी टापू की लहरों में उर्मिला की कारुणिक छाया के कारण जीवन से कतराने की इच्छा होने लगी। आदमी के चाहने से क्या होता है! उर्मिला और उसका पति एक दूसरे को कितना चाहते थे पर एक छोटी-सी ग़लतफ़हमी ने दो फूल जैसे जीवन कुचल कर रख दिये। मेरे वास-स्थान का गेट मेरे सामने खड़ा मुस्करा रहा था। जेनी चली गयी। लिफ्ट ने मुझे अपनी मंज़िल पर पहुँचा दिया। मेरा पिंजड़ा मेरी बाट जोह रहा था। स्वतन्त्रता के नाम पर जीवन-भर परतन्त्र रहने से तो गुलाम बन कर स्वतन्त्रता पाना बहुत अच्छा होता है। मैं कमरे के अन्दर चली गयी। सुनसान कमरा मुझे पा कर उल्लसित हो उठा। पर मेरा मन कुछ और ही चाह रहा था। मेरा जी कहने लगा कि अवश्य ही कोई पत्र आया होगा। लैटर-बक्स की चाभी ले कर मैं फिर नीचे चली गयी। उसमें मेरे नाम का भी एक पत्र था। मैं प्रफुल्लित हो कर लिफ्ट से ऊपर आई। मैंने लिफ्ट में पशुपति गुह्यश्वी स्वयंभू से एक भीख माँगी कि इस पत्र में कुछ अच्छी खबर हो। अगर माँगने पर मनुष्य देता है तो भगवान को भी आज कुछ देना पड़ेगा। लिफ्ट से बाहर आई। पता नहीं क्यों, इस बार कमरे में जाने से जी घबराने लगा। बरामदे में कोई नहीं था। हार मान कर मैं अन्दर चली गयी। काश कोनी टापू में मैं हमेशा रह सकती! काश मैं भी उर्मिला की तरह किसी का विश्वास पाने के लिए जान की कुर्बानी दे सकती! दिन में हुई बातें एक-एक करके मेरी नज़रों के सामने फैलने लगीं। 'हिमालय की गोदी में लेटे प्रकृति का सौंदर्यपान करने वाले मानवों की अपूर्व कृतियों, मन्दिरों और

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

देवगणों से खेलने की मेरे मन की इच्छा है' कहने वाले मार्क का चेहरा मेरी आँखों के सामने तैरने लगा।

पर यह सब अब मुझे कहाँ मिलने वाला है ! न तो मैं किसी के लिए जी सकती हूँ और न मर ही सकती हूँ। मेरे लिए तो जीवन गंगा की छाती पर चमकते चाँद जैसा है। पर अब मैं इस कमरे में बन्द रहना नहीं चाहती। तब मुझे लगा कि कोई कह रहा है, जीवन तो दीप में जलने वाली बाती की तरह है। जिस दीप में तेल नहीं उसकी बाती जल्दी ही खत्म हो जाती है और चन्द्र, तुम भी एक ऐसी ही बाती हो जिसके दीप में तेल नहीं और जो जलने की कोशिश में अपने को खाक बना रही है। मैं फिर द्वन्द्व में पड़ गयी। सुलझा हुआ मन कितनी जल्दी उलझ गया। मुझे किसी से कोई गिला नहीं। दोष तो मेरा है। पर जब तक मेरा मन उलझा रहे तब तक कोई भय नहीं। लेकिन डर तो इस बात का है कि कहीं उलझते-उलझते टूट न जाए। हाँ जी, मैं कटी पतंग हूँ, मै खोई हुई मुर्गी हूँ। मैं खो गयी हूँ। आज मैं उतावली हो कर इस कमरे में क्यों आई ? आज तो मैं बाहर भी रह सकती थी। डिपार्टमेंटल स्टोर में घूम सकती थी, घंटों रम सकती थी। पर मैं वहाँ पहुँचती कैसे ? उन लोगों के साथ ही मैं एक-दो बार गयी थी। मैंने साहस से काम लिया। बाहर आई, बटन पुश किया। आज लिफ्ट भी कितनी जल्दी मेरी बात मान रही है। शनिवार जो था। मैं अन्दर चली गयी। मैंने किसी मंज़िल का बटन न दबाया। वह रुकी रह गयी। मुझे कौन-सी मंज़िल पर जाना है स्वयं पता नहीं। मुझे एकाएक याद आया कि मैं अपनी चिट्ठी पढ़ना तो भूल ही गयी हूँ। मैं लिफ्ट से निकल कर कमरे में चली आई। पत्र खोल कर पढ़ा। मेरा मन घबराने लगा। उसे मैं एक ही साँस में पढ़ गयी। सचमुच एक आदमी दूसरे आदमी पर रहम कर सकता है, पर देवता नहीं। मैंने देवता से क्या माँगा और मुझको क्या मिला ! पिताजी ने लिखा है, क्या यह सच है कि मैं बच्चे की माँ बनने वाली हूँ। अपने देश से आए हुए एक परिवार के रसोइए से मेरे सम्बन्ध के विषय में जो गुमनाम पत्र प्राप्त हुआ है उसमें कितनी सत्यता है? एक ओर यह और दूसरी ओर मेरा छोटा

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

भाई सिनेमा के टिकट का ब्लैक करते समय पकड़े जाने के कारण कुछ दिनों के लिए जेल भेज दिया गया है। हे भगवान् ! यह सब मेरे अठारहवें वर्ष का प्रभाव तो नहीं है ? इस छोटे भाई ने भी परिवार को तबाह कर दिया है। कभी होटल में नौकर, तो कभी हिप्पियों से संगत। मामाजी उसको भी अपने यहाँ ले गये थे परन्तु वहाँ तो वह एक नम्बर का जुआरी बन गया। दिन-भर जुआ खेलता। मेरा सारा बदन काँपने लगा, मन तड़पने लगा। मेरी आँखें सामने रखे प्रचार-विभाग के कलेण्डर पर ठहर गयीं। आज के दिन मेरा देश पिशाच-चर्तुदशी के उत्सव में मग्न होगा। रथ-यात्राएँ, घुड़दौड़ सब-कुछ होगा पर मैं बन्दी बनी यहाँ पड़ी हूँ। क्यों नहीं कोई मेरे भाग्य पर छाये प्रेतों को नष्ट करने के लिए घुड़दौड़ करता ? हे भगवान्, मेरे लिए कुछ तो करो। मुझे शान्ति से जीने दो। मेरे जीने के हक को छीनने की कोशिश क्यों की जा रही है ? मैं एक दासी हूँ। मैं मानव से नहीं, भगवान् से दुआ माँगती हूँ, भीख माँगती हूँ। हाँ जी, इसलिए तो मेरा भाग्य मुझसे रूठ जाता है, जीवन टूट-टूट कर सिकुड़ता जा रहा था। इसी क्षण खिड़की से कूद कर आत्महत्या करने को मन चाहा। पर न तो मेरे जीने का प्रयोजन है और न मरने का। मेरा अस्तित्व होते हुए भी मैं अस्तित्वहीन हूँ। किसी न किसी आशा से ही मनुष्य जीता रहता है। मेरे जैसे जीवन को जीने के लिए जोश में न आ कर बहकना ज़रूरी हो जाता है। जीने की इच्छा ने ही मुझे बहकने को बाध्य किया। मरने का विचार लुप्त हो गया। मैंने जेनी को फोन किया लेकिन वहाँ किसी ने न उठाया। तब मैंने निर्णय किया कि चाहे जो हो आज मैं घूमने जाऊँगी। आज मैं स्वतन्त्र हूँ। आज मेरी राहों में रोड़े अटकाने वाला कोई नहीं है। मैं अपने कबूतरखाने में गयी। डिनर में आए मेहमानों के दिये हुए डालरों को ले कर अनजाने समाज की अपरिचित राहों पर अपनी दुनिया से निकल पड़ी। सारे दिन की तरह सड़कें अब भी सूनी थीं। एक बार तो लौटने की इच्छा हुई पर बढ़ते हुए पैर रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। मैं एक ही स्ट्रीट में चलने लगी। एवेन्यू के बाद एवेन्यू पार करती चली गयी। इस स्ट्रीट में अँधेरा होने के कारण खतरा था। यदा-कदा कुछ

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

शराबी मिल जाते थे। कहते हैं ये लोग अकेली स्त्री से बलात्कार करने से भी नहीं हिचकते। पर मुझसे तो बलात्कार को भी घृणा थी। आज तक ऐसी हिम्मत किसी ने नहीं की थी। मेरा साहस बढ़ता गया। मुझे सारा वातावरण पहचाना-सा लगा। दिन भर सो कर रात को जगा देने वाले स्काई-स्क्रेपर सब मेरे परिचित बन गये, मित्र बन गये। तब मैं जान-बूझ कर अंधकार भरी सड़कों पर चलने लगी। वहाँ का वातावरण कुछ अजीब-सा था। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर ढलते यौवन का भार उठाए स्त्रियाँ खड़ी थीं। सिगरेट पी-पी कर मस्ती में झूम रही थीं। इतने में ही वहाँ एक पुरुष आया। कुछ क्षण बातें हुई। थोड़ी ही देर बाद दोनों एक जोड़ी का रूप ले कर चल पड़े। मुझे तो उनका व्यापार अच्छा लगा। मैं भी वहाँ खड़ी हो गयी लेकिन मेरे पास कोई नहीं आया। मैं किसी की जोड़ी न बना सकी। उस दिन मैं अपने यौवन की हार देख कर चकित रह गयी। मैं अपने पथ पर बढ़ती चली गयी। ब्रौड-वे पहुँचने पर मेरा 'मैं' जाग उठा। मुझे ऐसा लगा कि वहाँ मनुष्यों की बाढ़-सी आ गयी है। विभिन्न प्रकार के गहनों की दुकानों ने मेरे मन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। भड़कीले वस्त्रों के शो-विन्डोज़ को देख कर मैं मोहित हो गयी। मेरे पास तो केवल इनको देखने की लालसा थी लेकिन खरीदने की ताक़त न थी। सुना है कि यहाँ अकेली स्त्री को देख कर लोग कुछ और ही समझते हैं। पर मुझे तो किसी ने कुछ न समझा, कुछ न कहा। मैं सिनेमा हाल के बाहर भी खड़ी रही और फुटपाथ पर खड़ी हो कर नाइट-क्लब की भीड़ को देखती रही लेकिन किसी ने कुछ न कहा। तब एकाएक मुझे लगा कि मैं खो गयी हूँ। मैं यहाँ एक-दो बार आ चुकी थी पर मेरा विश्वास साथ नहीं दे रहा था। मैंने जोश में अपना होश गँवा दिया था। पर साहस बहुत बड़ी चीज है। मैंने पुलिसमैन से अपने एवेन्यू जाने वाली बस का स्टॉप पूछ लिया। विनम्र पुलिसमैन ने समझा दिया। टाइम्स स्क्वायर की 'स्पॉट न्यूज़' वियतनाम युद्ध के विषय में कुछ कह रही थी। आसपास काफी भीड़ लगी थी। आखिर बस आ गयी। भीड़ कम थी। आज मैं अकेली आई थी, इसलिए भय के साथ स्वतन्त्रता का आनन्द मेरे दिल में

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

समाया हुआ था। किसी की नौकरानी हो कर और स्वयं 'मैं' हो कर घूमने आने में काफी फर्क होता है। मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग बस को, 'सब-वे' की गाड़ी को अपने निजी कमरे की तरह क्यों समझते हैं। एक कोने में एक पुरुष का हाथ स्त्री की ममता में लीन था। स्त्री हाथों में पकड़ी झोली सँभालने में व्यस्त थी। ४२वीं स्ट्रीट का चकाचौंधपूर्ण संसार आ गया। यह स्ट्रीट ही मुझे घर ले जाएगी। बस में धीरे-धीरे लोगों की संख्या बढ़ गयी, पर मेरे लिए सभी चेहरे अनजानथे। अब तो भय भी लगने लगा, कहीं परिचितों से भेंट न हो जाए। उनको क्या जवाब दूँगी मैं कहाँ गयी थी? लोग क्या सोचेंगे? अगर साहब जान गये तो बहुत गुस्सा होंगे। मैं जल्दी-जल्दी अपने कमरे में पहुँचना चाहती थी। इसमें डर की क्या बात है! कह दूँगी कि घूमने गयी थी। क्या मुझे घूमने का अधिकार नहीं? मैं कोई मशीन हूँ? पाप करने वालों को डर नहीं तो मुझे किस बात का डर है? पर मैं तो एक नौकरानी हूँ। मैं एक डिपार्टमेंटल स्टोर पर जहाँ मेमसाहिबा के साथ खरीद करने को आती थी उतर गयी। मैं पैदल चलने लगी। वातावरण की मौत जैसी नीरवता ने मुझे सचेत किया। पाँव सतर्क हो गये। बूँदाबादी भी शुरू हो गयी। मैं तेज़ चलने लगी। बारिश बढ़ गयी। मैं दौड़ने लगी। भीगती हुई मैं अपनी बिल्डिंग के सामने पहुँची। गेट-मैन ने पहचान लिया। मुस्कराते हुए दरवाज़ा,खोलकर कहा—

—आज मौसम सुहवना है।

मन में आया कह दूँ 'तो आओ न, ऊपर बहार मनाई जाए। आज तो मैं अकेली हूँ और कुमारी भी हूँ', पर संस्कारने केवल मुस्करा देने को बाध्य किया। मन ने तो सराय बनकर किसी कोनिवास देना चाहा परंतु अन्दर के 'मैं' ने इसकी स्वीकृति न दी। नौकरानी का भी अपना संस्कार और आतमा होती है। लिफ्ट के नीचे उतरने का संकेत मिल रहा था। लिफ्ट नीचे आई पर वहाँ तो एक जवान जोड़ी अपने संसार में मस्त थी। वह एक दूसरे को निगल जाने की कोशिश कर रहे थे। मुझे अन्दर जाने में संकोच लगा। वे बाहर नहीं निकल रहे थे। लिफ्ट बन्द हो गयी। लेकिन जब दुबारा खुली तो

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

पुरुष 'गुड-नाइट' कह रहा था। स्त्री उसी में खड़ी रह गयी। मैं अन्दर चली गयी। उस स्त्री के मुख पर तृप्ति की एक ज्योति झलक रही थी। अभी-अभी प्राप्त प्रेम से उसका यौवन दमक रहा था, चेहरा चमक रहा था। आज इसका तो शनिवार फल गया। मेरा...मेरा शनिवार जीवन में कभी नहीं फलेगा। मेरी जैसी नौकरानी के जीवन में बहार आने से कतराती है और बसन्त को खिलने से भय लगता है। मेरी मंज़िल आ गयी। मैंने अनजाने में उस तृप्त सुन्दरी को कहा—गुड-नाइट, गुड-लक।

वह कुछ क्षण असमंजस में पड़ गयी परन्तु तुरन्त कह उठी—गुड नाइट। उस को क्या पता कि मेरी रात्रि तो क्या, दिन भी कभी शुभ नहीं रहता। मैं कमरे में कुछ आवेश, जलन, पीड़ा और एक बड़ी हार को ले कर पहुँची। ऐसा जीना भी क्या जीवन है! संस्कार और समाज के नाम पर मेरा जीवन कितना बुज़दिल हो गया है! टेलिविज़न के आगे पड़ा पिताजी का पत्र व्यंग्य करने लगा। मैंने रंज में उसे फाड़ दिया। बाथ-रूम में गयी। उन टुकड़ों को बेसिन में डाल कर फ्लश खोल दिया। डूब मरे तुम्हारा संस्कार, तुम्हारा समाज! मैं अब इस तरह नहीं जी सकती। शीशे की चन्द्रलक्ष्मी ने हँस कर देखा। उसके अन्दर एक नया जीवन, एक नया साहस पलने लगा। मैं यन्त्रवत् गुनगुनाने लगी—

गन वने गन चने,
वने थान मदु दैव।
थथे जोगु रस दक्को,
तोल ताव जि गन वने...

[कहाँ जाऊँ कहाँ बैठूँ
जाने का ठौर नहीं देव!
इसके जैसा रस तारा
छोड़ कर मैं जाऊँ कहाँ?]

सचमुच इतना मनोरम और रंगीला देश छोड़ कर मैं कहाँ जाऊँ? मैं

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

भी कितनी हतभागिनी हूँ ! जीवन के इतने समीप हो कर भी कितनी दूर रही !

आज मैं बेड-रूम में जाने से भी नहीं घबरा रही थी क्योंकि आज की रात मेरी है। रेडियोग्राम लगा दिया। वातावरण में रविशंकर के सितार की लय थिरकने लगी। कमरे में बारह दिन बंद रखे गये दिनों की याद करके मैं नाचने लगी। सारा कमरा संगीत और नृत्य से सजीव हो गया।

मैंने जीवन पा लिया। मैं इस को खोना नहीं चाहती थी। मैं नाचती चली गयी और रात बीतती चली गयी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

पाँच

उन दिनों मुझे बुखार था, फिर भी काम करती थी। एक दिन चक्कर आने से मैं गिर पड़ी। चूड़ियों से मेरा हाथ कट गया। इसलिए मेरा काम करना बंद हो गया। मैं आराम कर रही थी। साहब और उन की पत्नी मेरी तबियत की पूछताछ करते रहते थे। मेरा जल्दी अच्छा होना उन लोगों के लिए आवश्यक था। खाने की बात पर दोनों में कितनी बार झड़प हो चुकी थी। मेमसाहिबा को तो फुर्सत ही नहीं थी। इन्हें अब पता चलेगा कि मैं काम करती हूँ या नहीं। अब पता चलेगा कि चन्द्रलक्ष्मी अनचाहे और अनजाने में उनके जीवन का एक अंग बन गयी है। अब चन्द्रलक्ष्मी के के दो व्यक्तित्व झलकने लगे थे—मैं और चन्द्रलक्ष्मी। एक नौकरानी और एक उनके जीवन की जरूरत। पर फिर भी इनके बीच में नारी की माँग की तरह कोई सीमा-रेखा नहीं, बर्लिन-दीवार अथवा मामा के घर, कीर्तिपुर शहर को दो भागों में बाँटने वाली दीवार नहीं है।

शायद बुखार बढ़ गया, सारा शरीर काँपने लगा। विचार-प्रवाह ने बुखार को एकाएक तीव्र कर दिया। नारी का सबसे बड़ा आभूषण सहन-शक्ति है। मुझे बेकार के झगड़ों में नहीं पड़ना चाहिए। बेकार की बातों में अपने विचारों को बहकने नहीं देना चाहिए। मुझे...। वे लोग भी तो अब काफी बदल गये हैं, वे भी अब मुझ से प्यार करते हैं। मेरा सारा शरीर कुम्हला-सा गया। साहब और उन की पत्नी घर पर नहीं थे। आजकल तो मैं इस घर की साँस की तरह हूँ। बाहर जाने के समय दोनों मेरे कबूतरखाने में मेरी हालत पूछ कर जाते। इस परिवर्तन में, पता नहीं, क्या चीज़ छुपी थी? फोन की घंटी बंद दरवाज़ों से छन कर आने लगी। मैं रिसीव करने को उठी तो मुझे चक्कर आ गया। मैंने कस कर आँखें बंद कर ली। मैं फिर

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

लेट गयी। मैं बहुत कमज़ोर हो गयी थी। आराम की सख्त ज़रूरत थी। गोपाल भैया का पत्र नहीं आया, माँ की तवीयत कैसी होगी। मेरा मन फिर धरती पर आ कर जम गया। मुझे अपने परिवार की याद आने लगी। सब थे : पिता, माता, दादी, बुआएँ, मामा, गोपाल भैया। पता नहीं, उस कबूतरखाने में जहाँ मेरे लिए पर्याप्त जगह नहीं थी, वे सब कैसे समा गये।

किसी ने बाहर का दरवाज़ा खोला और फिर मेरा कमरा खुला।

—चन्द्र, अब कैसी हो? लो, तुम्हारी चिट्ठी आयी है। तुम बोर न हो, इसलिए मैंने मिशन के एक दोस्त से तृम्हारे लिए गोरखा-पत्र ला दिया है।

आजकल साहब का मन इतना मानवीय क्यों हो गया है? साहब के जाने का संकेत बाहर का दरवाज़ा दे रहा था। गोरखा-पत्र को मैंने एक कोने में रख दिया। दो पत्र थे : एक पिताजी का, और दूसरा गोपाल भैया का। मैं खुश हो गयी। पर कहीं इसमें भी मेरे चरित्र के बारे में तो नहीं लिखा है? मैंने सहमे-सहमे पत्रों को खोलना शुरू किया। गोपाल भैया के पत्र में मेरी एक सहेली की बात थी जिसके चरित्र के बारे में खूब लिखा गया था। इस का मतलब मैं समझ गयी। उस के चरित्र के बारे में लिख कर भैया मुझे सचेत कर रहे थे। चरित्र किसी के सतर्क करने से नहीं बनता बल्कि चरित्र तो अपने-अपने स्वभाव की उपज है। गोपाल भैया भी शायद यह नहीं जानते। इन दिनों सब मुझे ज्ञान देने पर क्यों तुल गये हैं? मैंने क्या किया है? मुझ से ऐसी क्या बातें हो गयी हैं जिससे मेरे परिवार को इतनी ग़लतफ़हमी हो गयी है? यहाँ तो मैं किसी से मिलती भी नहीं हूँ। जब कभी मिशन वाले आते हैं तो उन लोगों के साथ खुल कर बातें कर लेती हूँ। उनके प्रश्नों का जवाब देना ही पड़ता है। मैंने भैया के पत्र को एक किनारे रख दिया। पिताजी के पत्र को देखने की इच्छा नहीं हुई। वही बातें होंगी। शायद गोपाल भैया से पत्र पिताजी ने ही लिखाया हो। पिताजी को मेरी काफी चिन्ता है। मेरे जीवन की नहीं बल्कि मेरे चरित्र की। जीवन बिगड़ जाए तो कुछ नहीं, लेकिन चरित्र नहीं बिगड़ना चाहिए। पर इससे क्या होता है! इन सब बातों के बावजूद पिताजी मुझे अपने देश

CC0- In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

लौटने को नहीं कहते । मैंने तो एक बार लिख भी दिया था कि मेरे आने के लिए माँ के गहने बेच कर टिकट भेज दो । पर यह न तो माँ को पसन्द है और न पिताजी ही चाहते हैं । चाहते भी कैसे ? उन लोगों ने सोचा था कि बेटी कुछ कमा कर लायेगी । परन्तु बेटी तो उनसे अपनी सम्पत्ति बेचने के लिए कह रही है । तो क्या मैं कभी भी अपने देश न जा पाऊँगी ? नहीं भी गयी तो क्या ? मेरा जीवन इसी जगह बीत जाएगा । अब तो मेरे जीवन से यौवन भी फिसलने लगा है । अधिक होगा, झड़ जाएगा । क्या साहब कभी भी अपने देश नही जाएँगे ? वे तो अपने बच्चों को भी यहाँ बुला रहे हैं । इसीलिए तो मेरी खातिरदारी बढ़ी है । बलि के बकरे की धूमधाम से पूजा की जाती है । विचारों में बह कर मुझे एक अजीब-सा आनन्द मिलता है । पर अब तो ऐसा लगने लगा है कि मैं विचार करने वाली कम्प्यूटर हो गयी हूँ । मैं गोरखा-पत्र पढ़ने लगी । मेरी आँखें जिस समाचार को चाहती हैं, वह वहाँ नहीं था । मैं क्या खोज रही हूँ, मुझे स्वयं पता नहीं । अचानक मेरे दिमाग़ में एक लहर-सी प्रज्वलित हुई और तब मैं सोचने लगी कि क्यों नहीं मेरे देश में एक बार प्रलय आ जाती ! एक बार जलमय क्यों नहीं हो जाता ! काश फिर एक नया मंजुश्री आ कर इनके कूपमंडूक विचारों को खड्ग-प्रहार से जीवन का नया रास्ता दिखा देता! और इसी स्थल पर से एक नये देवता का प्रादुर्भाव होता जिसका रूप शिवशक्ति का भी होता और प्रज्ञा-रूपी तारा सम्पन्न वृद्ध का भी होता । तब मेरे देश का पुनर्निर्माण होता । विदेश में कुछ काल के प्रवास ने अपने देश के प्रति मेरे प्रेम को बढ़ा दिया । जिस प्रकार बरखा के बाद पहाड़ों पर यौवन उतर आता है उसी प्रकार अपने देश के यौवन की याद मुझे सताने लगी । लेकिन मेरे सामने पड़ा गोरखा-पत्र घिसे-पिटे समाचारों से परिपूर्ण हो कर मुझे मायूसी से देख रहा था । वातावरण में एकाएक उदासीनता और मनहूसी छा गयी । कमरे का अंधकार घना हो गया । दम घुटने लगा । मुझे लगा कि सब मिल कर मुझे खा जाएँगे । मेरा कमरा, मेरा संसार कितना सिकुड़ा है, कितना उलझा हुआ है ! मैं धीरे-धीरे बाहर चली आई । प्रकाशमय कमरे ने पूछा, 'चन्द्र,

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

अब तो तुम ठीक हो ?' टेलिविज़न मुझसे बिछुड़ कर गुम-सुम पड़ा था। कोच, टेबुल और फर्श मेरे हाथों के प्यार से वंचित हो कर फीका जीवन जी रहे थे। मैंने टेबुल-लैम्प जला दिया। फोन की घंटी बज उठी। सचमुच अब मैं चंगी हूँ।

—हरिचरणजी हैं ?

अपने देश की आवाज़ सुन कर मेरी आँखों में आँसू छलछला आए। स्वर भी अपरिचित था।

—वे तो अभी नहीं हैं। क्या मैं आपका परिचय पा सकती हूँ ? और क्या मुझे मेसेज दिया जा सकता है ?

—मेरा नाम सुन्दरमान है। मैं अभी-अभी यहाँ आया हूँ। क्या आप भाभी बोल रही हैं ?

—नहीं जी, मैं उनकी नौकरानी चन्द्रलक्ष्मी...।

—चन्द्रलक्ष्मीजी, मुझे आप से भी मिलना था। गोपालजी ने आप के लिए बहुत कुछ भेजा है।

—आइये न यहाँ।

—मैं एयरपोर्ट से बोल रहा हूँ। अभी मैं वाशिंगटन जा रहा हूँ। दो दिन बाद आऊँगा। हरिचरणजी को भी यही मेसेज दे दीजियेगा। 'अच्छा, बाई-बाई।

फोन कट गया। जीवन समीप आ कर छूट गया। घर वालों ने क्या भेजा होगा ? खट्टा अचार, लाखामरी और सोयाबीन—यही तो होगा। वाशिंगटन जाने के बाद क्या यह सब यहाँ पहुँचेगा ? पर यह सुन्दरमान कौन है ? गोपाल भैया का दोस्त होगा। पढ़ने आया होगा। बहुत लोग आते-जाते हैं। पता नहीं, ये कब लौटेंगे ? अगर जल्दी लौटे तो मैं भी कुछ भेज दूँ। गोपाल भैया के दोस्त होने के कारण इनकार नहीं करेंगे। पर मैं क्या भेज सकती हूँ ? मेरे पास है ही क्या ? यों तो मेरे पास कुछ डालर हैं, लेकिन खरीद कर कौन देगा? अब तो मैं अकेली बाहर भी नहीं जा सकती। जब वे लोग बाहर गये हुए थे, मुझे खरीद लेना था। जब मैं काम करती

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

होती हूँ तो वे मेरा सूटकेस खोल कर देखते हैं, कहीं मैंने कुछ चोरी तो नहीं की। मैं फिर बेकार के विचारों में बहने लगी। मैंने अपने ख्यालों को वहीं रोक दिया, पर मेरा इस तरह खड़ा रहना वातावरण को अच्छा नहीं लगा। मुझे चक्कर आ गया। मैं डाइनिंग-टेबुल पर बैठ गयी। सिर दर्द करने लगा। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। मैं धीरे-धीरे अपनी छोटी-सी दुनिया में चली गयी। बिस्तर पर लेट गयी। कमज़ोरी की वजह से मेरे अंग-अंग में दर्द होने लगा।

—'बेटा !'—मुझे लगा, किसी ने मुझे पुकारा है। मेरे देखते ही देखते एक नारी-रूप अन्दर चला आया। चेहरा साफ नहीं दिख रहा था। कमरे के अंधकार और ड्राइंग-रूम के प्रकाश के संगम में मैं उस चेहरे को पहचान नहीं पा रही थी। शायद मेरी तबीयत खराब जान कर कोई देखने आया होगा। शायद मिशन के चीफ की श्रीमती हैं। अवश्य वे ही हैं क्योंकि वे सब देशवासियों की अपने बच्चों की ही तरह देख-भाल करती हैं। सब उन्हें 'अम्मा' कहते हैं। मैंने बिस्तर पर बैठना चाहा पर किसी शक्ति ने मुझे उठने न दिया।

—'बेटा !' एक बार फिर आवाज़ आई। प्रकाश से अंधकार में आने के कारण वह नारी मुझे देख नहीं पा रही थी। मैंने आवाज़ देना चाहा कि मैं इधर हूँ पर मेरा स्वर सूख गया, आवाज़ मन में प्रस्फुटित हो कर ही रह गयी। उसी समय मेरी आँखों में एक दीप जल उठा। उस नारी के चेहरे पर ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ। मैं अपनी माँ को पहचान गयी। माँ... मेरी माँ ! मैं फिर भी न उठ सकी। मेरी आँखें भर आईं। माँ के चेहरे को देख कर, उस की स्नेह और ममता को पहचान कर मेरा मन आनन्दित हो उठा। मैं उठ कर अपनी माँ के पैर भी न छू सकी। उन्हें बैठने के लिए भी न कह सकी। माँ भी चुप थीं। वे कुछ नहीं कह पा रही थीं। उन की आँखें एक टक मुझे घूर रही थीं।

'टन्न-न-न न' आवाज़ आई। मेरी आँखों का प्रकाश बुझ गया। प्रकाश और अंधकार के मिश्रित वातावरण में मेरी माँ का चेहरा धूमिल होने

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

लगा। कमरे का दरवाज़ा खोल कर किसी के अन्दर आने के साथ ही साथ मेरी माँ लुप्त हो गयीं। मैं कराह उठी। 'माँ...मेरी माँ !' पर वहाँ तो मेमसाहिबा खड़ी थीं। उन्होंने मेरे कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया। मेरे दिल का तूफान उभर कर आँखों से बरसने लगा। मैंने सुबकना शुरू कर दिया। मेरे अन्दर, मेरे बाहर एक करुण-सी फिजा छा गयी। मेरा अंग-अंग रोने लगा।

—हम लोगों ने क्या कहा है जो तुम इस तरह रो रही हो ?

एक कड़ुवा स्वर आ कर मेरे दिल में चुभ गया। हाँ जी, मुझे रोने का भी अधिकार नहीं। मुझे रोना नहीं चाहिए। मैं तो एक नौकरानी हूँ... एक कम्प्यूटर। विचारों के प्रवाह में बहने वाली एक नौकरानी। मैंने अपनी कलाई को जिगर में ही सुखा लिया। कहीं माँ को कुछ हो तो नहीं गया ? नहीं-नहीं, मेरी माँ को, मेरे किसी अपने को कुछ न करना, भगवान्। 'बेटा !' स्वर का मायाजाल अभी भी मेरे दिल और दिमाग़ में था। हाँ जी, यह केवल मेरा भ्रम था। मेरी कमज़ोरी का एक बहकावा मात्र था। मेमसाहिबा किचन में थीं। पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी। मैं धीरे से उठी। दरवाज़ा खोला। बन्द किचन के अन्दर एक हलचल थी। प्रत्येक बर्तन की आवाज़ में मेमसाहिबा का गुस्सा मुझ पर चीत्कार कर रहा था। मुझे भूख लगने लगी। भूख मिटाने के लिए मनुष्य को काम करना पड़ता है। अगर मैं काम नहीं करूँगी तो मुझे खाना नहीं मिलेगा। मेरी भूख उसी क्षण ग़ायब हो गयी। मेरी अठारह वर्ष की जवानी भी इसी तरह अतृप्त हो कर विलीन हो जाएगी, मर जाएगी। मैं धीरे से बाहर चली आई पर किचन का दरवाज़ा खोलने की हिम्मत न कर सकी। कहीं डाँट न पड़ जाए इस डर से मैं सहम गई। कहीं आज मेमसाहिबा किसी से झगड़ कर तो नहीं आयीं ! उनकी बुरी आदत है कि वे छोटी-छोटी बातों को 'फील' कर जाती हैं।

—कौन ?

एक कड़कती आवाज गूँजी। मेरा सारा शरीर काँप गया।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

—जी, मैं चन्द्र !

वातावरण में केवल बर्तनों की आवाज़ फैल रही थी। मैंने सोचा, सुन्दरमानजी के फोन के विषय में कह देना चाहिए, नहीं तो कहीं इस पर भी नाराज़ न हो जाएँ। मैंने सहमे-सहमे किचन का दरवाज़ा खोला।

—एरोड्रोम से साहब के किसी दोस्त सुन्दरमानजी का फोन आया था। वाशिंगटन जा कर दो दिन के बाद आने को कहा है।

आखिर मैं जो सोचती थी वही हो गया। शोला भड़क पड़ा।

—इन गेस्टों ने भी मुझे तबाह कर दिया है। अपने देश से आने वाले लोगों के लिए केवल यही घर रह गया है।

मैं क्या कहती ! पता नहीं क्यों, गेस्ट आने पर मुझे खुशी होती थी। मेरे पिंजड़े में कुछ दिन के लिए बहार आ जाती थी। फिर सुन्दरमानजी तो गोपाल भैया के दोस्त हैं। मेरे लिए कुछ लाये हैं। मैं अपने कमरे में चली आई। कुछ ही देर बाद मालकिन मेरे कमरे में एक हाथ में आरेन्ज-जूस से भरा गिलास और दूसरे हाथ में प्लेट में रखी डबल-रोटी लिये खड़ी थीं। सब-कुछ मेरे सामने रख कर चली गयीं। मैं अवाक् रह गयी। बैल को चारा और दाना देना आवश्यक होता है। भूखा पेट खाने को उतावला हो रहा था परन्तु आहत दिल भूख को भगाने की कोशिश में था। चिड़िया-घर में जानवरों को इसी तरह खाना दिया जाता है। मैं भी तो चिड़ियाघर की जानवर हूँ। मेरे भी चारों ओर न दिखने वाली 'आयरन-बार्स' हैं, जंजीरें हैं। फर्क केवल इतना ही है कि मुझे देखने अथवा मुझसे अपना मन बहलाने कोई नहीं आता। मैंने अपने ही आपको क्या-क्या नहीं बनाया ? दासी, कम्प्यूटर और अब चिड़ियाघर का जानवर। मैं भी खूब हूँ ! मैं ये सब हूँ और इसीलिए चन्द्रलक्ष्मी कहला कर भी चन्द्रलक्ष्मी नहीं हूँ। मेरा व्यक्तित्व टूट-टूट कर बिखर गया है। अपने आप में मेरा अस्तित्व है ही नहीं। कभी-कभी तो सोचते-सोचते मन में यह भी विचार आता है कि मैं एक किंवदन्ती मात्र रह गयी हूँ। एक पुरानी कहानी, जिसको सुन कर लोग अपना और अपने बच्चों का जी बहलाते हैं। हाँ जी, मैं एक किंवदन्ती

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

हूँ पर इस किंवदन्ती में कोई राजकुमार नहीं आता। यहाँ नौकरानी को कभी राजकुमार का मन बहलाने का मौक़ा नहीं मिलता। तो यह कथा झूठी है ? सच्ची कथा में तक़दीर का परिवर्तन होना आवश्यक है। मैं फिर विचारों में बह गयी। विचारों के प्रवाह में बहना मेरे लिए एक नशा-सा हो गया है। इसी में मुझे आनन्द आता है। मालकिन ने फोन किया। उनके स्वर में एक अजीब उत्तेजना थी। आज इनको क्या हो गया है ? कुछ ही देर बाद वे बाहर चली गयीं। वे गुस्सा करती थीं, डाँटती थीं, लेकिन उन्हें इतना उत्तेजित मैंने कभी नहीं देखा था। इतना मुझे भान हो गया कि उनका यह व्यवहार मेरे प्रति नहीं था। अवश्य ही कोई हादसा हो गया है। मालकिन बड़ी शंकालु हैं। कहीं मालिक को किसी लड़की के साथ तो नहीं देख लिया ? स्वतन्त्र संसार में आ कर भी उनके विचार पुराने ही हैं। वे मालिक को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती हैं। मालिक की सेक्रेटरी सुन्दर और आकर्षक युवती है। एक बार मालिक ने उसे डिनर के लिए बुलाया तो घर में हंगामा मच गया। तब से साहब ने उसे बुलाना ही छोड़ दिया। मेमसाहिबा ने जिस तरह मेरी स्वतन्त्रता को जंज़ीरों में जकड़ रखा है उसी तरह साहब को भी जकड़ना चाहती हैं। पर मजबूरी के कारण उनको चुप रहना पड़ता है। मेमसाहिबा के न रहने पर साहब का व्यक्तित्व कितना खिल जाता है ! पर मालकिन ने इतना दबाव डाल रखा है कि लोग तो कभी-कभी मज़ाक भी कर देते हैं। आज मेरा मन मालकिन के प्रति विद्रोह की भावना से भर गया। मैं तो कभी भी अपने पति को इस तरह दब्बू बना कर नहीं रखूंगी। मर्द को तो मर्द की तरह जीना चाहिए। काश वे मेरे...। नहीं-नहीं, मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। ये लोग मेरे अन्नदाता हैं ? क्यों मेरा मन बार-बार इस तरह की उलझन में जकड़ जाता है ? मालकिन को अपने पति पर यह अन्याय नहीं करना चाहिए। लेकिन उनको कौन रोकेगा ? उनको कौन समझाएगा कि इस देश में ऐसे बन्धन अधिक दिन नहीं टिक सकते ? कहीं बन्धन टूटने के साथ-साथ मालकिन की तरफ से मालिक का दिल ही न टूट जाए। बाढ़ बाँध को तोड़ देती है और इधर-

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उधर सब दिशाओं में बिखर जाती है। बंधन का परिणाम भयानक भी हो सकता है क्योंकि इस देश में जहाँ जीवन और यौवन एक-दूसरे से आँख-मिचौनी खेलते हैं वहाँ किसी का अधिक दिन बंधन में रहना बहुत मुश्किल है।

कुछ देर बाद मालकिन फिर अन्दर आ गयीं। ऐसा लगता था कि गुस्से को शर्म आ गयी है। साहब के आने का समय हो गया। तो इनका गुस्सा किस पर था ?

—क्या तुमने कुछ नहीं खाया ? कहीं बुखार फिर तो नहीं चढ़ गया ?

मालकिन का स्वर ममता से पूर्ण था। मुझे तो सपना-सा लगा। नारी का क्षण-क्षण में परिवर्तन देख कर मैं हैरान थी।

इसी समय फोन की घंटी गूँज उठी। जब मालकिन फोन करके लौटीं तो उनके मुख पर प्रसन्नता की झलक सपष्ट दिखायी देती थी। शायद मालिक का फोन होगा।

—चन्द्र, तुम तो पिक्चर देखने जा नहीं पाओगी। तुम्हारे साहब ने फोन किया है कि हम पिक्चर देखने जाएँगे और खाना भी बाहर खाएँगे। अगर तुम्हें ज़रूरत हो तो ले लेना।

नारी कितनी कमज़ोर होती है ? पति के फुसलाने पर उसे स्वर्ग मिल जाता है। पर मुझे कौन मनाएगा-फुसलाएगा। मैं स्वयं अपने को फुसलाने लगी, मनाने लगी। मैं अपने को कैसे मनाऊँ ? उस को क्या कह कर फुस-लाऊँ ?पुरुष ही स्त्री को बना सकता है। पत्नी को पति, बेटी-बेटे को माता-पिता ही मना सकते हैं। पर मेरा यहाँ कौन है ? माता-पिता हैं भी तो सात समुद्र पार। पुरुष और पति तो मेरी तक़दीर में ही नहीं है। हाँ जी, स्त्री को एक पुरुष चाहिए—एक दोस्त, एक पति।

मुझे अपना जीवन चलाने के लिए एक पुरुष, एक पति की आवश्यकता है। जीवन की राह में अकेले चलना बहुत कठिन होता है। सुनती हूँ, नारी एक उम्र में पुरुष को पाना चाहती है। इसी तरह एक ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है जब उसे पुरुष का सहारा बहुत आवश्यक हो जाता है। शायद मेरी

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उम्र और परिस्थिति भी ऐसी हद पर पहुँच गयी है। मुझे प्रेम करने वाले, मुझे अपने दर्द पर मरहम लगाने वाले और मेरी व्यथा पर सहानुभूति जताने वाले किसी साथी की सख्त जरूरत महसूस होने लगी। मुझे स्वयं ही पता न लगा कब मैंने चिल्ला कर कहा :

—मुझे एक साथी की ज़रूरत है, एक मर्द की, एक पति की।

पर कुछ ही क्षण बाद मैं स्वयं लजा गयी। मैं कितनी निर्लज्ज हो गयी हूँ ! मैंने अपना चेहरा हाथों से ढँक लिया। सामने टँगे कैलेण्डर पर बना मेरे देश का एक चित्र मुझे गालियाँ देते लगा। मैं स्वयं अपने संस्कार के विरुद्ध अपने स्वभाव के परिवर्तन को देख कर आश्चर्यचकित थी। बेचैन हो गयी, परेशान हो गयी। मुझ में यह कैसी तबदीली हो गयी है ! अपने परिवर्तन को देख कर मुझे रोना आ गया। यह पाप मेरे मन में क्यों घर कर गया है ! मेरे व्यक्तित्व का इस तरह बँट कर झगड़ना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। पर मैं कर भी क्या सकती थी ! मुझे अब पता चला कि मैं कितनी लाचार हूँ, मजबूर हूँ ! अंधकारपूर्ण अपने संसार को देखकर मैं सहम गयी। ड्राइंग-रूम भी भूखी निगाहों से मेरी ओर ताक रहा था। मैं उन लोगों के बेड-रूम में चली गयी। दो पलंग एक-दूसरे से सटे एक होकर बिछे थे। बिस्तरा कितना अच्छा लग रहा था ! मेरी इच्छा हुई कि उस पर जा कर सो जाऊँ। कमरा काफी सजा हुआ था, पर कमरे के मौन वातावरण से मेरा मन उकता गया। मैंने पर्दे उठा दिये। कुछ दूरी पर विशाल अस्पताल सहमा-सा खड़ा था और उसके उस पार पानी का सागर फैला हुआ था। परन्तु मेरा जीवन तो इसी पिंजड़े में भटक रहा था। मेरा संसार कितना चुप-चुप-सा हो गया था ! ड्रेसिंग-टेबुल पर लगे आईने में मैं अपने को परखने लगी। मेरा जीवन मेरे हाथों से फिसल कर कितनी जल्दी भागे जा रहा था। काश मैं इस आईने की चन्द्रलक्ष्मी हो सकती जिसके बस मात्र रूप है। उस को न तो बोलना है, न काम करना है। लेकिन मैं अपने आप को छाया नहीं बनाना चाहती। मैंने धीरे से किताबों की पंक्तियों को सहलाया। मुझे पढ़ने की कितनी इच्छा थी पर मेरे नसीब में नहीं था। शायद

CC0: In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मेरे जीवन में ऐसा व्यक्ति आए जो मेरी पढ़ाई में रुचि ले। इस कल्पना मात्र से ही मैं सिहर उठी। मैं पंलग पर लेट गयी और मेरा हृदय गुनगनाने लगा।

जीने के लिए एक साथी की आवश्यकता है। नारी को एक पुरुष की आवश्यकता होती है। जीवन को पहचानने के लिए पति-पत्नी बन कर ज़िन्दगी गुज़ारने की ज़रूरत होती है।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

छह

—ज़रा सुनिए। शायद ये साहब आप लोगों से मिलने आए हैं।

लिफ्ट से उतर कर बाज़ार जा रही थी तो गेटमैन के ये शब्द मेरे कानों से टकराये। हाँ जी, इन दिनों मुझे कुछ छूट मिल गयी थी। बाज़ार में मेरा आना-जाना बढ़ गया था। मैंने देखा कि अपने देश का एक पुरुष मुझे निहार रहा था।

—मैं सुन्दरमान हूँ। हरिचरणजी से मिलना है।

मैं चौंक गयी।

—नमस्कार! मैं चन्द्रलक्ष्मी हूँ। चलिए ऊपर।

अनजाने ही मेरे हृदय में सुन्दरमानजी के प्रति अपनेपन की भावना जागृत हो उठी। पता नहीं क्यों, मेरा मन खुशी से पागल हो उठा। गेट से 'टाक' पर मैंने मालिक से बात की। सुन्दरमानजी को कमरे तक पहुँचा कर मैं फिर बाज़ार चली गयी। गोपाल भैया के दोस्त सुन्दरमान! मेरा ख्याल है कि सचिवालय में काम करने वाले उनके दोस्त यहीं हैं। मैंने बाज़ार का काम जल्दी-जल्दी खत्म किया। आज मुझे पिंजड़े-से कमरे में आने की उत्सुकता थी क्योंकि आज वहाँ एक नया जानवर आया था। सुन्दरमानजी—जानवर! रेड-लाइट के कारण क्रॉसिंग पर रुकी हुई चन्द्रलक्ष्मी खिलखिला पड़ी। ज्यों-ज्यों अपने भवन का गेट निकट आता गया, मेरा उत्साह कम होता गया। मैं तो यहाँ एक नौकरानी हूँ। गोपाल भैया की बहन तो नेपाल में ही छूट चुकी है। मेरे पैर रुक-रुक कर चलने लगे। आखिर न जाने कैसे मैंने कमरे की कॉल-बैल दबा दी। कमरा खाली खाली-सा था। चुप-चुप-सा वातावरण मुझे खलने लगा।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

—देखो चन्द्र, तुम्हारी माँ ने तुम्हारे लिए क्या-क्या भेजा है !

बेड-रूम से मालकिन की आवाज़ आई। मैं कमरे के अन्दर चली गयी। खटमिट्ठी, लाखामरी आदि बिखरी पड़ी थीं।

—देखो चन्द्र, ऐसी चीज़ें भेजने को मना कर दो। कहीं ऐसी चीज़ें भी विदेश में भेजते हैं ?

मैं अवाक उन्हें देखती रह गयी। मालकिन ने मेरी माँ की ममता को ठुकरा दिया। यह उनका अधिकार था। मालकिन तो मालकिन ठहरीं, और नौकरानी की औक़ात ही क्या होती है ? उसे तो सब-कुछ चुपचाप सहना पड़ता है।

—क्या तुम सुन्दरमानजी को जानती हो ?

—जानती हूँ। वे मेरे गोपाल भैया के दोस्त हैं।

—तुम्हारी तो सभी से जान-पहचान है। कोई पिता का साथी और कोई भैया का दोस्त। सुन्दरमानजी न्यूयार्क में सरकारी नौकरी के लिए आए हैं। कुछ दिन हमारे यहाँ रहेंगे। यह तुम्हारे साहब के छात्र-जीवन के अभिन्न मित्र हैं।

मैं सुनती रही। सचमुच मालिक के साथी मेरे भैया के दोस्त कैसे हो सकते हैं ! यह नामुमकिन है। वह कोई दूसरा सुन्दरमान होगा। पर बिखरी हुई चीजें जो माँ ने मेरे लिए भेजी थीं, कुछ और ही कह रही थीं।

—चन्द्र, सुन्दरमान जी अब खाना भी यहीं खाया करेंगे। खाना ज़रा अच्छी तरह बनाया करना।

इस तरह उस वातावरण में सुन्दरमानजी का प्रादुर्भाव हुआ। सोने और रहने के लिए वहीं रहते थे पर खाना प्रायः बाहर ही खाते थे। शनिवार और इतवार को भी खाने में झिझकते थे। उनको आए तक़रीबन एक महीना हो गया था। उनका हँसता चेहरा, पता नहीं क्यों, अब सदा कुम्हलाया-सा रहने लगा। मैं यह भी जान चुकी थी कि मेरे प्रति मालिक और मालकिन के व्यवहार से उन्हें संतोष नहीं था। क्योंकि उनकी नज़र में मैं एक नौकरानी न हो कर उनके दोस्त की बहन थी। मैं उनका सारा काम

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

कर दिया करती थी। कमीज़ धोना, सूट पर आयरन करना और यहाँ तक कि उनके बूट भी पॉलिश कर देती थी।

एक दिन शनिवार की सुबह की बात है। उनका चेहरा तना हुआ था। मेरे मन में एक टीस उठी कि आज शायद उनकी तबीयत ठीक नहीं है। उन्होंने न तो चाय पी और न ब्रेकफास्ट ही लिया। वे लोग अभी सोये हुए थे। वे मुझसे भी अच्छी तरह बात नहीं कर रहे थे। कपड़े पहन कर बूट-पॉलिश करने लगे। मैंने उनका हाथ बँटाना चाहा तो वे शुष्क स्वर में बोले—

—तुम अपना काम करो। मैं स्वयं ही पॉलिश कर लूँगा।

मैं सन्न रह गयी। अवश्य ही इनको किसी ने कुछ कह दिया है। मेरी आँखों में आँसू आ गये। मेरे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—

—मैं तो आपको कितना अपना समझतीहूँ परन्तु औरों की तरह आपने भी मुझ पर गुस्सा उतारा। ठीक है मैं एक नौकरानी जो हूँ। अगर आप लोगों की यही इच्छा है तो यही सही।

कुछ क्षण चुप रहने के पश्चात् वे फिर बोले।

—चन्द्र, मुझे माफ कर देना। मैंने तुम को दुःख दिया है। मैं तुम से नाराज़ नहीं हूँ। तुम मेरी अपनी हो इसलिए अनजाने में ही मैंने तुम पर अपना गुस्सा उतार दिया है। मुझे तो क्रोध तुम्हारे चारों तरफ के वातावरण पर आ रहा है। काश, मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता!

मैं सहम गयी। कहीं उन लोगों ने सुन लिया तो! मुझ में पता नहीं कहाँ से साहस आ गया। मैंने सुन्दरमानजी की आँखों में आँखें डाल कर कहा—

—अच्छा तो प्रॉमिज़ कीजिए कि आप अब मुझ से गुस्सा नहीं होंगे और आप का सब काम मैं ही करूँगी।

उन्होंने आँखों ही आँखों में बहुत कुछ कह दिया। वे मुस्करा कर कहने लगे—

—अच्छा तो ठीक है। मैं तुम्हारा कहना मान लूँगा।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

इतना कह कर वे बाहर चले गये। उनका स्वभाव तो बच्चों-जैसा है। लगता है कि मैं इनको पहचान गयी हूँ। उनका मेरे ऊपर गुस्सा तो केवल एक प्रतिक्रिया मात्र थी। शायद अनजाने में ही इनके हृदय में मेरे प्रति प्यार की भावना पल रही है। मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। अपने लालची स्वभाव के विचारों में मुझे बहकना नहीं चाहिए। बेड-रूम का दरवाज़ा खुला। मालिक वाश-रूम में चले गये—मालकिन ड्राइंग-रूम में आ गयीं। पर मेरी आँखें एक ही चीज़ देख रही थीं—टेबुल पर पड़ा ठंडी चाय से भरा कप और प्लेट में पड़े हुए टोस्ट। आज सुन्दरमानजी ब्रेकफास्ट किए बिना ही चले गये हैं। पर फिर भी मैं खुश थी। उन्होंने प्रॉमिज़ किया है कि अब वे मुझ से गुस्सा नहीं होंगे। उन्होंने कसम खायी है कि अब से उनका सब काम मैं ही करूँगी। आज मुझे नौकरानी बनने में आनन्द आ रहा था। नौकरानी न होती तो उनके कपड़ों को कैसे धोती, उनके जूतों को पॉलिश कैसे करती? मालकिन की फटी आवाज़ ने मेरे स्वप्न को भंग कर दिया। रूखे शब्दों में फ्रूट-जूस माँगा जा रहा था। मालिक भी वाश-रूम से निकल कर अखबार पढ़ने लगे। एक मन ने अनसुनी करके वाश-रूम में जाना चाहा। आज सुन्दरमानजी ने ब्रेकफास्ट नहीं लिया तो इन लोगों को भी न दिया जाए। पर नौकरानी के मन की मुराद कहाँ पूरी होती है! मैंने यन्त्रवत्, मन मारे, अनचाहे उन लोगों का ब्रेकफास्ट साइड-टेबुल पर रख दिया। हाँ, घर की नौकरानी और ऑफिस की टाइपिस्ट की अवस्था एक जैसी होती है। दोनों को ही सब को खुश रखना पड़ता है। दोनों का प्रेम किसी एक में नहीं अटक सकता। इनका प्रेम बिखरा होता है। नहीं, नहीं, मैं अपने प्रेम को बिखरने नहीं दूंगी। मेरे मन का चोर विद्रोह कर उठा। मुझ से ब्रेकफास्ट नहीं खाया गया। आज सुन्दरमानजी ने नहीं खाया तो मैं कैसे खा सकती हूँ। मन भावुक बन गया। साहब अपनी पत्नी से हँस-हँस कर बातें कर रहे थे और चाय पी रहे थे। मालकिन का आरेन्ज जूस भी खत्म हो चुका था। पर मुझे उस दिन भूखे रहने में मज़ा आ रहा था। मुझे लगा कि ऐसी ही भावना जीवन को ज़िन्दगी प्रदान करती है।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

नहीं ! मुझे एक पराए पुरुष के प्रति ऐसी भावना नहीं लानी चाहिए। यह पाप है। नहीं, यह पाप नहीं, नारी का अधिकार है।

सुन्दरमानजी के उस दिन के व्यवहार ने मेरे सूने जीवन में एक आशा की लौ जला दी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

खंड : २

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

एक

जी हाँ ! अब मैं सुन्दरमान की पत्नी हो चुकी हूँ। अब मैं किसी की नौकरानी नहीं रही। अब मैं पिंजड़े में बंद पक्षी नहीं हूँ। अब तो मैं एक पत्नी हूँ—सुन्दरमान की पत्नी। फिसलता जा रहा जीवन ज़िन्दगी से टकरा कर वापिस मेरे हाथों में आ गया। मुझे नाचने की इच्छा होने लगी। मैं खुशी के मारे पागल होती जा रही थी।

यह कमरा मेरा है। आज मैं अपनी इच्छा से इस कमरे को सजा सकती हूँ। मैं जहाँ चाहूँ जा सकती हूँ। अब मुझे बात-बात पर कोई टोकेगा नहीं। मैं स्वयं अपने से लजाने लगी। यह मैं क्या सोच रही हूँ ? मैंने चारों ओर देखा। वहाँ कोई नहीं था। केवल समुद्र को झाँकती हुई खिड़कियाँ थीं। वह कमरा मुझे विदेश में भी अपना देश लग रहा था। एक ओर मेरी और उनकी तस्वीर मुस्करा रही थी। यहाँ सब कुछ मेरा है। प्रत्येक वस्तु में मेरी छाया की झलक दिखायी देती थी। यह संसार हम दोनों का है। मैं किचन में गयी। कितना भला लगता है ! हर जगह उनकी हँसी मेरा पीछा करती है। उनकी हँसी ही मेरा जीवन है। पुरुष नारी का जीवन ! इस विचार से मैं चौंक गयी। नारी तो पुरुष की दासी है ! अचानक मेरी आँखें छलछला आईं। नहीं, नहीं, पति का काम करने में, उनकी मनोभावनाओं को समझ कर सहायता देने में पत्नी पति की दासी नहीं, सहयोगिनी बनती है। इस शब्द से मन में एक मीठा-सा दर्द हुआ। मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ कि आज मैं अपने पति की सहयोगिनी बन सकी हूँ ! मेरे सामने संयुक्त परिवार का जीवन तैरने लगा। वहाँ दासी बन कर जीती हुई बहुओं का जीवन मेरे दिल को कचोटने लगा, मुझे भय दिखाने लगा, मेरे विचारों को खटखटाने लगा। मेरे देश के अपने घर में एक जोड़ी किराये पर रहती

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

थी। एक दिन किसी बात पर पति-पत्नी का झगड़ा चल रहा था। मेरी आँखों के सामने सारा दृश्य घूम गया मानो वह घटना उसी दिन घटी हो—

—हाँ, हाँ, मैं तो नौकरानी हूँ। खरीदी हुई दासी हूँ। दिन-भर काम करती रहती हूँ फिर भी आपको शान्ति नहीं है। आप भी मुझे झिड़क रहे हैं। जैसी आपकी मर्ज़ी हो वैसा ही करें।

—देखो, मेरा गुस्सा मत बढ़ाओ। अगर काम करना ही नौकर का प्रतीक है तो सारे संसार के लोग एक-दूसरे के दास और दासियाँ हैं। मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारे लिए ही तो मर-मर कर काम करता हूँ।

इसके बाद क्या हुआ हम लोगों ने नहीं सुना क्योंकि उन लोगों ने कमरा बंद कर लिया था। नारी दासी, नर भी दास। पुरुष की दासी उसकी पत्नी और नारी का दास उसका पति। यह भी तो अच्छा है। मैं अपने इस विचार पर स्वयं ही मुस्करा पड़ी।

फोन से बुलावा आ गया। सारे ख्याल विलीन हो गये। मैं केवल चन्द्र-लक्ष्मी रह गयी। दासी और पत्नी की भावना भी कहीं सिकुड़ गयी। जेनी मुझे 'डाउन टाउन' ले जाना चाहती थी। मुझ से जवाब देते न बना। 'न' भी कैसे कहती ! उस परदेश में तो जेनी मेरी माँ जैसी थी। मेरे दुःख के दिनों में वही तो एक सहारा थी। 'हाँ' कहने का मैं निर्णय न ले सकी। वे थके हुए आफिस से आएँगे। उस समय उन को मेरे प्यार, स्नेह और ममता की आवश्यकता होगी। उन्हें कह कर ही जाना जच्छा होगा। मेरा मौन देख कर जेनी ने स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा—

—चन्द्र, मैं तुम्हारे द्वन्द को समझ गयी हूँ। मैं तुम्हारे यहाँ आऊँगी और फिर तय करेंगे।

मुझे सन्तोष हुआ। जेनी कितनी समझदार है ! उन को भी जेनी के प्रति गहरी श्रद्धा है। वे भी जेनी को माँ की तरह मानते हैं क्योंकि जब मैं हरिचरणजी के यहाँ काम करती थी तो जेनी ने जीवन संजोये रखने में मेरी कितनी सहायता की, उन को सब पता लग चुका था। हमारी शादी का सारा इन्तज़ाम भी जेनी ने ही किया था। वह मेरी माँ भी बनी और सास

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

भी। अपनी शादी की बात सोचते ही मैं ख्यालों में खो जाती हूँ। किस तरह किस परिस्थिति में उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाया, यह अपने में एक कहानी है। मैं अभी सोच ही रही थी कि उन को फोन करूँ कि आज जेनी आने वाली है और उसके साथ 'डाउन टाउन' जाना है लेकिन इसके पहले ही उन का फोन आ गया। जेनी ने उन को भी फोन किया था।

सामने की समुद्र की हवा को मैंने कमरे में बुला लिया। मुझे खिड़की खोलते ही लगा कि मैं पहाड़ की चोटी पर हूँ। मैं समुद्र को देखती रह गयी। मैं अपनी आँखों में सारे समुद्रको समा लेना चाहती थी। जेनी आती होगी। वे भी तो आते होंगे। मैं किचन में खाने के लिए कुछ बनाने चली गयी। किचन में जाने पर मुझे कभी-कभी पुरानी बातें याद आ जाती हैं और मन काँप जाता है। किचन चाहे बदल गया है पर जीवन तो वही है। लेकिन इस किचन ने मुझे कभी नौकरानी की दृष्टि से नहीं देखा। हाँ, आज मैं खाना अपने लिए, अपने पति के लिए बनाती हूँ। खुले दरवाज़े से किचन में भी ठंडी हवा आ रही थी। ठंडी हवा के कारण उस दिन मेरा मन बार-बार स्वदेश लौटने के लिए तड़पने लगा। पहाड़ों से घिरी हुई प्रकृति, सौन्दर्य से पूर्ण घाटियाँ, छोटी-छोटी सड़कें और छोटे-छोटे घर मेरी आँखों के सामने घूमने लगे। कल्पना मुझे खींच कर अपने देश में ले गयी। पर मैं कल्पना के संसार में नहीं, सत्य के संसार में रहने का तरीक़ा सीखना चाहती थी। मैंने कल्पना को खदेड़ दिया। नाश्ता तैयार हो गया। पर न तो जेनी पहुँची और न वे। अपने अकेलेपन से मैं फिर घबराने लगी। मन कुंठित होने लगा। मैं अब भी नौकरानी हूँ। किसी मनुष्य की नहीं, समय की। समय काटना कितना मुश्किल है! मुझे आभास हुआ कि मेरा जीवन एक कैनवस है जहाँ सब-कुछ रेखांकित हो चुका है, फिर भी कुछ दिखाई नहीं देता। हाँ, मैं खाली कैनवस हूँ। मेरा जीवन ही ऐसा है। उन्होंने कितनी आशा और विश्वास से मुझे अपनाया पर मैं स्वयं अपने लिए भी परायी होने लगी हूँ। अपने विचारों से मैं स्वयं हैरान थी। अपने अन्तर्मन में दबी हुई निराश भावना को उगते देख कर मेरी मायूसी फिर से लहराने लगी। वे लोग

CC0: In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

थी। एक दिन किसी बात पर पति-पत्नी का झगड़ा चल रहा था। मेरी आँखों के सामने सारा दृश्य घूम गया मानो वह घटना उसी दिन घटी हो—

—हाँ, हाँ, मैं तो नौकरानी हूँ। खरीदी हुई दासी हूँ। दिन-भर काम करती रहती हूँ फिर भी आपको शान्ति नहीं है। आप भी मुझे झिड़क रहे हैं। जैसी आपकी मर्ज़ी हो वैसा ही करें।

—देखो, मेरा गुस्सा मत बढ़ाओ। अगर काम करना ही नौकर का प्रतीक है तो सारे संसार के लोग एक-दूसरे के दास और दासियाँ हैं। मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारे लिए ही तो मर-मर कर काम करता हूँ।

इसके बाद क्या हुआ हम लोगों ने नहीं सुना क्योंकि उन लोगों ने कमरा बंद कर लिया था। नारी दासी, नर भी दास। पुरुष की दासी उसकी पत्नी और नारी का दास उसका पति। यह भी तो अच्छा है। मैं अपने इस विचार पर स्वयं ही मुस्करा पड़ी।

फोन से बुलावा आ गया। सारे ख्याल विलीन हो गये। मैं केवल चन्द्र-लक्ष्मी रह गयी। दासी और पत्नी की भावना भी कहीं सिकुड़ गयी। जेनी मुझे 'डाउन टाउन' ले जाना चाहती थी। मुझ से जवाब देते न बना। 'न' भी कैसे कहती! उस परदेश में तो जेनी मेरी माँ जैसी थी। मेरे दुःख के दिनों में वही तो एक सहारा थी। 'हाँ' कहने का मैं निर्णय न ले सकी। वे थके हुए आफिस से आएँगे। उस समय उन को मेरे प्यार, स्नेह और ममता की आवश्यकता होगी। उन्हें कह कर ही जाना जच्छा होगा। मेरा मौन देख कर जेनी ने स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा—

—चन्द्र, मैं तुम्हारे द्वन्द को समझ गयी हूँ। मैं तुम्हारे यहाँ आऊँगी और फिर तय करेंगे।

मुझे सन्तोष हुआ। जेनी कितनी समझदार है! उन को भी जेनी के प्रति गहरी श्रद्धा है। वे भी जेनी को माँ की तरह मानते हैं क्योंकि जब मैं हरिचरणजी के यहाँ काम करती थी तो जेनी ने जीवन संजोये रखने में मेरी कितनी सहायता की, उन को सब पता लग चुका था। हमारी शादी का सारा इन्तज़ाम भी जेनी ने ही किया था। वह मेरी माँ भी बनी और सास

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

भी। अपनी शादी की बात सोचते ही मैं ख्यालों में खो जाती हूँ। किस तरह किस परिस्थिति में उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाया, यह अपने में एक कहानी है। मैं अभी सोच ही रही थी कि उन को फोन करूँ कि आज जेनी आने वाली है और उसके साथ 'डाउन टाउन' जाना है लेकिन इसके पहले ही उन का फोन आ गया। जेनी ने उन को भी फोन किया था।

सामने की समुद्र की हवा को मैंने कमरे में बुला लिया। मुझे खिड़की खोलते ही लगा कि मैं पहाड़ की चोटी पर हूँ। मैं समुद्र को देखती रह गयी। मैं अपनी आँखों में सारे समुद्रको समा लेना चाहती थी। जेनी आती होगी। वे भी तो आते होंगे। मैं किचन में खाने के लिए कुछ बनाने चली गयी। किचन में जाने पर मुझे कभी-कभी पुरानी बातें याद आ जाती हैं और मन काँप जाता है। किचन चाहे बदल गया है पर जीवन तो वही है। लेकिन इस किचन ने मुझे कभी नौकरानी की दृष्टि से नहीं देखा। हाँ, आज मैं खाना अपने लिए, अपने पति के लिए बनाती हूँ। खुले दरवाज़े से किचन में भी ठंडी हवा आ रही थी। ठंडी हवा के कारण उस दिन मेरा मन बार-बार स्वदेश लौटने के लिए तड़पने लगा। पहाड़ों से घिरी हुई प्रकृति, सौन्दर्य से पूर्ण घाटियाँ, छोटी-छोटी सड़कें और छोटे-छोटे घर मेरी आँखों के सामने घूमने लगे। कल्पना मुझे खींच कर अपने देश में ले गयी। पर मैं कल्पना के संसार में नहीं, सत्य के संसार में रहने का तरीक़ा सीखना चाहती थी। मैंने कल्पना को खदेड़ दिया। नाश्ता तैयार हो गया। पर न तो जेनी पहुँची और न वे। अपने अकेलेपन से मैं फिर घबराने लगी। मन कुंठित होने लगा। मैं अब भी नौकरानी हूँ। किसी मनुष्य की नहीं, समय की। समय काटना कितना मुश्किल है! मुझे आभास हुआ कि मेरा जीवन एक कैनवस है जहाँ सब-कुछ रेखांकित हो चुका है, फिर भी कुछ दिखाई नहीं देता। हाँ, मैं खाली कैनवस हूँ। मेरा जीवन ही ऐसा है। उन्होंने कितनी आशा और विश्वास से मुझे अपनाया पर मैं स्वयं अपने लिए भी परायी होने लगी हूँ। अपने विचारों से मैं स्वयं हैरान थी। अपने अन्तर्मन में दबी हुई निराश भावना को उगते देख कर मेरी मायूसी फिर से लहराने लगी। वे लोग

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

अभी तक क्यों नहीं आए ? अगर एक भी आ जाता तो मेरा एक-एक क्षण मनहूस बन कर न कटता। वातावरणबदल गया, तक़दीर बदल गयी, परन्तु जीवन के प्रति मेरा अविश्वास अभी भी क़ायम था। इस तरह अव भी अपने जीवन पर विश्वास न रखना उनके प्रति बेईमानी करना है। मुझ पर उन की जो आस्था है उस पर लात मारना है। मैं कितनी नीच और पापी बन गयी हूँ ! उनके प्रति यह सरासर अन्याय है। अब मुझे इस तरह विचारों में उलझना अच्छा नहीं लगता। मेरी उलझन उनके जीवन को भी उलझा देगी। फिर हम दोनों का जीवन बर्बाद हो जाएगा। हरिचरणजी को हँसने का और जगहँसाई करने का मौक़ा मिल जाएगा। पर मैं अपनी विचार-धारा की हत्या कैसे करूँ ! जीवन का जिसने केवल कृष्ण-पक्ष देखा है उस को शुक्ल-पक्ष पर विश्वास नहीं होता। सत्य भी उसे स्वप्न-सा लगता है। अपने अंधकारपूर्ण विचारों को अपने लिए नहीं तो उनके लिए ही अपने से दूर रखना होगा। मैं उठी। मैंने कमरे का रूप बदलने की ठान ली। इधर के कोच को उधर रखा। अलमारी की पोज़ीशन भी बदल दी। कमरे की सारी सजावट में परिवर्तन हो गया। 'कॉल-बैल' की आवाज़ ने मुझे बुलाया। जेनी और वे दोनों साथ आए। दोनों ने एक बार कमरे की जाँच की। जेनी चिल्ला पड़ी—

—कितनी अच्छी सजावट की है ! सुन्दर, मेरी वेटी चन्द्र के पति बन कर तुम एक भाग्यवान पुरुष साबित हुए हो।

उनका चेहरा खुशी से लाल हो गया। वे मेरी ओर देख कर प्रेमपूर्वक मुस्कराने लगे। भगवान करे, वे मुझसे सदा इसी तरह खुश रहें।

—चन्द्र, नाश्ता जल्दी तैयार करना। आज जेनी, तुम और मैं पिक्चर चलेंगे।

कितने अपनेपन का अधिकार लिए उनका स्वर कमरे में बिखर गया।

—नाश्ता तो तैयार है। पर मैं पिक्चर न जा सकूँगी क्योंकि मेरा सिर दर्द करने लगता है।

—सुन्दर ! चन्द्र की आँखें एक बार ज़रूर जँचवाओ। मुझे लगता है

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

कि अधिक काम करने से इसकी आँखें कमजोर हो गयी हैं।

—नहीं मैं चश्मा नहीं लगाऊँगी। मुझे पढ़ना-लिखना नहीं है।

—चन्द्र, तुम्हें चश्मा लगाना ही पड़ेगा। कल से पढ़ने भी जाना पड़ेगा। जीवन पा कर जीने का तरीक़ा भी सीखो। इस तरह कमरे में बन्द रहने पर तबियत खराब हो सकती है।

हमारी बातों से वातावरण में एक परिवार की छाया तैरने लगी। मैं प्रसन्न थी, वे प्रफुल्लित थे और जेनी को तो एक माँ का आनन्द मिल रहा था।

नाश्ता करके हम लोग बाहर आ गये। दरवाज़े के बाहर आते ही समुद्र की ठंडी हवा ने हमारी अगवानी की। मेरा शरीर एक बार सिकुड़ गया पर मन खिल पड़ा।

—चन्द्र, मैं तो बताना भूल ही गया था कि तुम्हारे पिताजी का पत्र आया है। यह लो।

उन्होंने पॉकेट से पत्र निकाल कर मुझे दे दिया। मैंने पत्र को खोल कर उसी जगह देखना चाहा पर एकाएक एक बात याद आ गयी। कितना फर्क है इनमें और हरिचरणजी में ! ये मेरा पत्र कभी नहीं खोलते। पढ़ने को देती भी हूँ तो नहीं पढ़ते। कभी-कभी तो मेरी इतनी इच्छा होती है कि वे पत्र पढ़ें तो मैं सुनती जाऊँ। तब वे मुझे झिड़क देते हैं कि मेरी आदत दूसरों की चिट्ठी पढ़ने की नहीं है। उधर हरिचरणजी अपनी पत्नी का पत्र खोल कर सारा का सारा पढ़ कर देते थे। और तो और, मुझ नौकरानी का पत्र भी बिना पढ़े कभी नहीं देते थे क्योंकि नौकरानी का पत्र सेन्सर करना आवश्यक होता है वरना उसमें उसको आदमी बनने की तालीम दी गयी हो सकती है। हम 'सब-वे' के स्टेशन पर पहुँच चुके थे।

—चन्द्र, क्या बात है आज तुम बोल नहीं रही हो ! हम लोगों ने तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध चलने को कहा इसलिए नाराज़ तो नहीं हो गयीं ?

जेनी की प्यार भरी बातों ने मेरे चेहरे पर मुस्कान बिखेर दी। मैंने जेनी के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा—नहीं जेनी, ऐसी बात आप

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

कभी न सोचा करें। मैं आप लोगों से कभी नाराज़ नहीं हो सकती। मैं तो अतीत के संसार में विचरने लगी थी।

—देखिए न जेनी, आपकी बेटी को वर्तमान से अतीत अधिक पसन्द है। मुझसे...।

मैंने बिगड़ कर उनके मुँह पर अपना हाथ रख दिया। हम तीनों खिल-खिला कर हँस पड़े। पर मुझे वर्तमान के प्रति अन्याय नहीं करना चाहिए था। अतीत की बातों को ले कर वर्तमान को मायूस नहीं बनाना चाहिए था। स्पीड से आती हुई गाड़ी स्टेशन पर आ कर रुक गयी। हम ठीक से अन्दर पहुँचे भी न थे कि गाड़ी ने फिर स्पीड पकड़ ली। जीवन को इसी तरह स्पीड से चलाने की ज़रूरत है। वरना ज़िन्दगी और मौत में फर्क ही क्या होता है! मुझे और जेनी को तो सीट मिल गयी, पर वे खड़े ही रहे। शायद उनको इसी में मज़ा आ रहा था। पिताजी की चिट्ठी पढ़ने के लिए मेरी उत्सुकता बढ़ रही थी। वे मुझे मुस्करा कर देख रहे थे। दूर से ही खड़े-खड़े अपनी ममता दिखा रहे थे। उन को मेरे प्रति काफी ममता और स्नेह है। पर मुझे स्नेह और ममता ही नहीं, प्यार चाहिए। मैं किसी की करुणा और दया में पलना नहीं चाहती। प्रेम की भीख माँगती हुई उन को देख कर मैं भी मुस्करा पड़ी। जवाब में एक प्यार भरी हँसी मेरी आँखों में तैर गयी। सचमुच वे मुझे प्यार भी करते हैं। मैंने उन को ग़लत समझ लिया था। पहली ही नज़र में उन्होंने मुझे अपने मन-मन्दिर में बसा लिया था। इसीलिए तो जब मैं हरिचरणजी की नौकरानी थी तो बात-बात पर मुझ पर गुस्सा उतार देते थे। गुस्सा प्यार की शुरूआत होती है। अब देखो, गुस्सा करना जानते ही नहीं। मेरी सब ग़लतियाँ हँस कर टाल देते हैं। कहीं मुझे ग़लतफ़हमी न हो जाए इसलिए अधिक प्यार करने लगते हैं। और तो और, मेरे गुस्से का भी जवाब प्यार से देते हैं। मैंने उनकी ओर देखा। वे एकटक मेरी ओर देख रहे थे। मैं अचकचा गयी। इधर-उधर देखने लगी। जेनी अखबार में मग्न थी। सब लोग अपने आप में मस्त थे। यहाँ के जीवन में मुझे यही अच्छा लगता है। अपना-अपना काम करो, ताक-झाँक की

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

ज़रूरत नहीं। गिला शिकवा करना जानते ही नहीं। गाड़ी फुल स्पीड पर थी। स्टेशन पर स्टेशन गुज़रते जा रहे थे। शायद वे थक गये होंगे। एक बार मैंने इशारे से अपनी सीट लेने को कहा। वे केवल हँस पड़े। मुझे लगता है कि उनकी प्रत्येक हँसी में मेरा जीवन पनप रहा है। मुझे अभी तक पता नहीं था मैं कहाँ जा रही हूँ। शायद 'डाउन टाउन'। मैं कहाँ जा रही हूँ, इससे मुझे कोई सरोकार न था। मुझे इसी में आनन्द आ रहा था कि मैं उनके साथ जा रही हूँ। हे भगवान, अब मुझे उनसे कभी विलग न करना! जीवन के अंधकार में इतनी पल चुकी हूँ कि जीवन पा कर भी एक भय सदा मुझे व्याकुल किये रहता है। संतोष में भी एक खटका लगा रहता है। मेरे जीवन में अभी भी अपने बुरे दिनों की राख के कण बाकी हैं।

—चन्द्र, शायद तुम को पता नहीं कि सुन्दर तुम्हें अगले वर्ष घर ले जाएगा।

जेनी ने एकाएक मुझ से कहा। नहीं, अब मैं घर जाना नहीं चाहती। मैंने जेनी से पूछा—

—क्या यह सच है?

और मेरी आँखें उनसे कुछ पूछने लगीं। वे समझ गये और मेरे नज़दीक आ गये। मैंने उन से पूछा—

—क्या सचमुच अगले वर्ष हम घर जाएँगे?

—तो जेनी ने तुम से कह ही दिया। हाँ, हम लोग जाएँगे। दो वर्ष में एक बार घर जाने की छुट्टी मिलती है। क्या तुम्हें पसन्द नहीं?

मैं क्या कहती! उनकी इच्छा ही मेरी इच्छा है। पर अन्तर्मन से मैं जाना नहीं चाहती थी। मेरे चेहरे के भावों से शायद वे भी समझ गये होंगे। जेनी के निर्देश से ३४वीं स्ट्रीट पर उतरना था। चलती गाड़ी के कारण जेनी का स्वर कुछ अस्पष्ट था, पर मैं समझ गयी। उसने कहा था—चन्द्र, क्या बात है? एक नवविवाहिता में जो उत्साह होना चाहिए वह तुम में नहीं है।

—नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मुझे भी पता था कि मेरा मन कहीं से टूटा हुआ है। जितनी भी जोड़ने की कोशिश करती हूँ कतरा कर रह जाता है। पुराने जीवन की छाया अभी भी मेरे ऊपर मँडरा रही थी। उनके कितना कहने पर भी मेरे शृंगार में अभी कोई परिवर्तन नहीं था। परन्तु जेनी के इस तरह कहने पर मुझे शीशे में अपना चेहरा देखने की इच्छा बढ़ने लगी। उन्होंने भी बहुत बार कहा था कि मेरे चेहरे पर उमंग और उत्साह दिखाई नहीं देता। अभी भी मुझ में जीवन से अधिक मृत्यु की छाया दीखती है। जीवन तो मुझे अभी-अभी मिला था। सचमुच मैंने अब ही तो जीना सीखा है, फिर मृत्यु से क्यों डरूँ ? पर अब ऐसी बातों में बहकना अच्छा नहीं लगता। तब मैं सोचने लगी : मेरा रूप कैसा होगा ? शायद बैसाख की गर्मी में मायूस हो कर खिड़की पर बैठी अकेली नारी की तरह। इसीलिए तो आज नौकरानी न होने पर भी मेरा अन्तर्मन बार-बार अपने को नौकरानी कहता है।

मैंने उनकी ओर देखा। वे मुझे तीखी नज़रों से देख रहे थे। आश्चर्य, उदासीनता, प्रेम और ममता की रश्मियाँ उनके चेहरे पर उभर रही थीं। जेनी फिर अखबा॰ में खो गयी थी। मेरी इच्छा हुई कि या तो मैं उनके साथ खड़ी हो जाऊँ या उनको अपने साथ बिठा लूँ। पर इसी समय ३४वीं स्ट्रीट का स्टेशन आ गया। हम उतर कर एक डिपार्टमेण्टल स्टोर में गये। मुझ में कुछ खरीद करने की चाह नहीं थी क्योंकि मेरा मन आज भी चंचल हो रहा था। मुझे तो घर लौट जाने की धुन लगी हुई थी।

—चन्द्र, क्या तुम्हें घूमना अच्छा नहीं लगता ? सुन्दर, मुझे तो लगता है कि इसकी तबीयत ठीक नहीं है।

जेनी ने स्नेह-भरे शब्दों में कहा। सचमुच मेरी सेहत ठीक नहीं थी। कभी-कभी चक्कर से आने लगते। पता नहीं मुझे क्या हो गया है ? पहले तो ऐसा नहीं होता था। अब तो खाना भी अच्छा नहीं लगता।

—चन्द्र, देखो कल मेरा एक दोस्त नेपाल जा रहा है। अगर तुम्हें अपने घर कुछ भेजना है तो आज ही खरीद लो।

उनके इतना कहते ही मुझे परिवार की याद आ गयी। तब मुझे याद

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

आया कि मैंने तो अभी तक पिताजी का पत्र भी नहीं पढ़ा है। उसमें क्या लिखा होगा ? उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। देती भी क्या ? शायद मेरा इस तरह चुप रहना उनको खल गया।

—चन्द्र, मैं तुम्हारा पति हूँ। मेरे रहते तुम्हारा इस तरह विचारों में खोये रहना अच्छा नहीं लगता।

—नहीं, मैं ठीक हूँ।

मैं अपने जवाब से स्वयं संतुष्ट नहीं थी। उनका मन तड़प उठा। उन्होंने बड़े उदासीन स्वर में कहा—

—चन्द्र, शायद तुमको मेरी पत्नी बन कर संतोष नहीं है ?

—नहीं, नहीं, आप ऐसी बात मुँह से न निकालें। आप न करते तो मेरा जीवन...।

—देखो चन्द्र, तुम्हारी यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती। मैंने तुमसे शादी करके तुम पर दया नहीं दिखायी। मेरी तो तुम्हारे गोपाल भैया के यहाँ से आते वक्त ही तुम्हें अपनी जीवन-संगिनी बनाने की इच्छा थी। तुम्हें कितनी बार कहा है, फिर भी तुम समझती नहीं।

मुझे इन सब बातों पर कभी भी विश्वास नहीं होता। माना कि वे गोपाल भैया के दोस्त हैं लेकिन मुझसे शादी की इच्छा उनकी कल्पना की उपज है। मेरे दिल को बहलाने के लिए उन की एक भावुक सन्तुष्टि है।

--चन्द्र, मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ ! पर तुम तो मेरे प्रेम को दया की भावना में लपेट कर मेरे मन की हत्या कर देती हो।

—विश्वास कीजिए मैं अपनी हत्या कर सकती हूँ परन्तु आपके मन की हत्या न करूँगी।

इस तरह बातें करते-करते हम डिपार्टमेण्टल स्टोर के बाहर पहुँच चुके थे। जेनीतो हम दोनों कोछोड़ कर, पता नहीं, किधर चली गयी थी। नज़दीक के पार्क में लोग जमा होने लगे थे। ऐसा लगता था कि समुद्र स्वयं ही किसी बात पर बहस कर रहा है। एक टैक्सी सामने आ कर रुकी और चली

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

गयी। वस अपनी रफ्तार में जा रही थी। लोग 'सब-वे' स्टेशन से निकल रहे थे। मुझे उनकी ओर देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी क्योंकि मैंने अपने देवता के दिल को ठेस पहुँचाई थी। मुझे अपने ऊपर गुस्सा आने लगा। मैं उनको देख कर मुस्कराना चाहती थी। उनकी चोट पर मरहम लगाना चाहती थी। पर अभी भी मेरे अन्दर जीवन के प्रति अविश्वास पल रहा था। मैं चाह कर भी कुछ न कर सकी। मुझे अपने ऊपर क्रोध आ गया और क्रोध घृणा में बदल गया। फिर भी मुझसे कुछ करते न बना। जब मैं इस द्वन्द्व में थी तभी जेनी हाथों में पैकिटों को उठाए आ पहुँची। मेरे और उनके बीच का तनाव कम हो गया। उन्होंने जेनी से कुछ पैकेट ले लिये।

—तुम लोगों ने कुछ नहीं खरीदा।

—क्या लेते ? चन्द्र का मूड ही ठीक नहीं रहता। इसको कोई भी चीज़ पसन्द नहीं।

—चन्द्र, तुम सेडिस्ट क्यों होती जा रही हो ? तुम को किस चीज़ की कमी है ? सुन्दर-सा भला पति मिला है। तुम अपने लिए नहीं तो सुन्दर के लिए हँसा करो। जीने का तौर-तरीक़ा सीखो और जीवन का मजा लो।

मैं तो असमंजस में पड़ गयी। मेरा मन स्वयं कराह पड़ा। मैं सेडिस्ट नहीं हूँ। मुझे क्या हो गया है, मैं स्वयं नहीं जानती। सचमुच मैं तो अपने जीवन के परिवर्तन से चकित थी। एक अनहोनी हो गयी थी, इसलिए मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। विश्वास न होने के कारण मेरा मन भटक रहा था—अतीत, वर्तमान और भविष्य के त्रिसंगम में। हम लोग सड़क को पार करके 'सब-वे' स्टेशन पर उतरने की जगह पहुँच चुके थे। पता नहीं, उनके मन में क्या वात आयी। उन्होंने एक टैक्सी को बुलाया। हम टैक्सी से घर की ओर चल पड़े। जेनी भी हमारे साथ थी।

—तुम्हारे पिताजी ने क्या लिखा है ? घर में सब कुशल तो है ?

उनके शब्दों ने एक बार फिर मेरे मन को झकझोर दिया। मुझे तो

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

पत्र पढ़ने की इच्छा ही नहीं रह गयी थी। टैक्सी अपनी स्पीड से बढ़ रही थी।

जेनी हमारे यहाँ डिनर खा कर चली गयी। वे भी थक गये थे, इसलिए जल्दी ही सो गये। पर मेरी आँखों में नींद नहीं थी। पिताजी का पत्र अब भी बंद पड़ा था। मैंने फाड़ कर पढ़ना शुरू किया। माँ की तबियत बिगड़ गयी थी। अगर हो सके तो मुझे आने को कहा गया था। माँ को मेरा पति पसन्द था लेकिन जिस परिस्थिति में हमने शादी की वह पसन्द नहीं था। सच, कहा जाए तो प्राचीन परम्परागत समाज में मेरी शादी कितनी अच्छी लगती ! स्वयं मुझे भी कैसा-कैसा लगता था और उनको कहती भी थी कि स्वदेश जा कर हम रीतिपूर्वक अपनी शादी की रस्म-रिवाज़ अदा करेंगे। पिताजी ने तो पत्र लिखना भी बन्द कर दिया था। परन्तु, आखिर मैं उनकी बेटी ठहरी, पत्र आने लगे। औरों ने तो नही, उन्होंने क्षमा कर दिया था। मैंने सोने के लिए लाइट ऑफ की। अन्धकार में मेरा मन अतीत की ओर जाने के लिए मचलने लगा। आज मैं सुन्दरमानजी की पत्नी हूँ। परन्तु यह एक अनोखी घटना का फल था।

उस शनिवार को ब्रेकफास्ट किए बिना सुन्दरमानजी चले गये थे। वे दिन-भर नहीं आए। आखिर जब रात को आए तो साहब से कहने लगे कि मैंने अपने लिए एक अपार्टमेंट ढूँढ़ लिया है और मैं सवेरे ही चला जाऊँगा। जब वे जाने लगे तो मैं बड़ी कातर दृष्टि से उनको देख रही थी। उनकी आँखें अपनी भाषा में मुझे विश्वास दिला रही थीं। फिर भी मैं मन मार कर रह गयी। इसके बाद मेरा मन सब कामों से ऊबने लगा। उनका जाना मेरे लिए एक विद्रोह की भावना प्रदान कर गया। मेरे कामों में सुस्ती आ गयी। उन लोगों को भी मेरे स्वभाव की जानकारी हो गयी थी पर फिर भी वे कुछ न कहते। केवल बाहर जाने की पाबन्दी बढ़ गयी थी। उस रात दोनों जने पार्टी से देर से लौटे थे। हरिचरणजी तो अच्छी तरह चल भी नहीं पा रहे थे। पैरों की लड़खड़ाहट ने उस कमरे को शराबखाना-सा बना दिया था। मेरा मन काँपने लगा। पता नहीं किस बात पर पति-पत्नी

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

में किच-किच हो रही थी। साहब उस दिन बेड-रूम में न सो कर ड्राइंग-रूम में सोने चले गये। मुझे उस दिन ऐसा लगा कि कुछ होकर रहेगा। मैं मेम-साहिबा के यहाँ बेड-रूम में चली गयी। मैंने उनसे कहा, मुझे आज की रात उस कमरे में रहने दो। मेमसाहिबा गरज पड़ीं। इतने में साहब भी अन्दर आ गये। वे मुझे घसीट कर बाहर ले गये। उनकी नीयत ठीक नहीं थी। मैंने मेमसाहिबा से सहायता की भीख माँगी। वे बाहर आकर मुझे अपने जूतों से पीटने लगीं। मेरी सहनशक्ति की सीमा पार हो गयी। मैंने कहा : क्या आप लोग मुझे इसीलिए यहाँ लाये हैं? साहब की वासनापूर्ण आँखें मेरे हृदय को बेंध रही थी। मेमसाहिबा ने कहा : नौकरानी को जो कहा जाए उसे वही करना होता है। अब मुझ से भी न रहा गया। मैं कह पड़ी : नौकरानी आप लोगों का काम करने के लिए है, इज्ज़त गँवाने के लिए नहीं। पति-पत्नी का संयुक्त स्वर वातावरण में चीख उठा : नौक-रानी हो तो जो हम लोग कहेंगे तुम्हें वही करना पड़ेगा। मैं अवाक रह गयी। मुझे तो उसी क्षण अपनी हत्या करने की इच्छा हो गयी। मैं क्या कर सकती थी! मुझे सुन्दरमानजी का फोन नम्बर पता था पर फोन करती कैसे! वे लोग करने भी न देते। तब मैंने दोनों से संघर्ष करने की ठान ली। एक ही झटके से शराब में डूबा हुआ पति एक ओर लुढ़क गया। पाप के भय में डूबी पत्नी भी कुछ न कर सकी। पर मैंने वहाँ रुके रहना अच्छा नहीं समझा। दरवाज़े की ओर बढ़ी तो मेमसाहिबा ने मेरे बालों को पकड़ कर मुझे फर्श पर पछाड़ दिया। मैं अभी सँभलने भी न पायी थी कि नशे में चूर साहब ने टेबुल पर रखा फूलदान मेरे सिर पर दे मारा। उसके बाद क्या हुआ मुझे कुछ पता नहीं। जब होश में आयी तो रात मर चुकी थी। सिर पर खून बह कर जम गया था। सारा बदन दर्द कर रहा था। बेड-रूम का दरवाज़ा बन्द था। डूबते को तिनके का सहारा। मैंने सुन्दरमानजी को फोन कर दिया। सुन्दरमानजी जिस समय पहुँचे उस समय तक साहब और उनकी पत्नी जग चुके थे। सुन्दरमानजी ने उन लोगों को काफी बुरा-भला कहा और उन लोगों के रोकने पर भी वे मुझे अपने साथ ले आए। उधर साहब

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

ने यह बात फैला दी कि मैं सुन्दरमानजी के साथ भाग गयी हूँ। कुछ जाने-पहचाने देशवासी सुन्दरमानजी को समझाने आए। मुझे साहब के यहाँ भेज देने की सलाह देने आए। पर सुन्दरमानजी को, पता नहीं, क्या हो गया था ! वे कुछ सुनने को तैयार न थे। जब लोगों ने डराया-धमकाया तो उन्होंने मुझे भी आश्चर्यचकित कर सब लोगों को सुना दिया कि मेरी और उनकी शादी होने वाली है इसलिए हमारी निजी बातों में कोई दखल न दे। और जेनी की सहायता से उन्होंने एक छोटी-सी पार्टी में मुझे अपनी जीवन-संगिनी बना लिया। मुझे इस घटना पर विश्वास नहीं होता। मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि मेरे जीवन में ऐसा हादसा होगा। पर आज यह सत्य है। मेरे पति मेरी बगल में सोए हुए हैं। सुन्दरमान मेरे पति हैं और मैं सुन्दरमान की। मुझे लाज आ जाती है पर मेरा मन गर्व से प्रफुल्लित हो जाता है। अब जीवन मुझ से नहीं कतराएगा। शीशे में अपनी छाया को देखा। मैंने कपड़े भी नहीं उतारे थे। अब मुझे सो जाना चाहिए। अगर वे मुझे जगता देख लेंगे तो उन्हें चोट लगेगी। वे सोचेंगे कि मैं अपने नए जीवन से संतुष्ट नहीं हूँ। मैं उनको पाकर भी सुखी नहीं हूँ। मेरे मन में एकाएक एक घटना कौंध जाती थी। मैं उन दिनों गोपाल भैया के यहाँ गयी हुई थी। यह घटना इधर आने से एक महीने पहले की थी। वे भी गोपाल भैया के यहाँ आए हुए थे। वे और इन्दु दीदी आपस में हँस कर बातें करते थे। मैं तो बच्ची थी। इन्दु दीदी के लिए मेरा वहाँ रहना भी आवश्यक था परन्तु मुझे वहाँ अच्छा नहीं लगता था। आज वे कहते हैं कि उन्हीं दिनों से मैं अच्छी लगती हूँ। यह झूठ है, सरासर झूठ है। उनको इन्दु दीदी से प्रेम था। शायद अब भी है। इसलिए तो उस दिन डिपार्ट-मेण्टल स्टोर में एक स्वैटर दिखा कर कह रहे थे कि इसको तुम अपनी इन्दु दीदी के लिए खरीद लो। उनको दीदी से प्रेम है तो क्या हुआ ? क्या प्रेम करना पाप है ? इन्दु दीदी तो अब चाह कर भी उनके जीवन में नहीं आ सकती। उसने तो अपना संसार बसा लिया है और आज वे भी मेरे पति बन गये हैं। हाँ जी ! सुन्दरमान अब मेरे पति हैं। अब उनमें और मुझमें

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

कोई अन्तर नहीं रह गया है। वे मुझ में पूर्ण रूप से एकाकार हो गये हैं। लेकिन कभी-कभी लगता है कि यह सब सपना है। इसका भी तो कारण है। क्योंकि हम एक भी तो अचानक हुए हैं। इस घटना को सोच कर मेरा मन विक्षिप्त होने लग जाता है। पर यथार्थ जीवन की हरदम जीत हुई है। मेरी नजर उनके सोए हुए भोले चेहरे से चिपक गयी। जीवन के प्रति मेरा अविश्वास और भय अचानक ही लुप्त हो गया।

टेबुल पर रखे पत्र ने मुझे फिर कहा, माँ की तबियत ठीक नहीं है। आज सुबह जब इन्होंने अगले वर्ष अपने देश चलने के लिए कहा तो मेरी क़तई इच्छा न थी। अब इस पत्र ने मुझे हिला कर रख दिया। मुझे लगा कि माँ की ममता उसी क्षण आने के लिए कह रही है। एक बार अपने देश के बदले हुए चेहरे को देखने को चाह हुई। पर मेरा मन फिर भटकने लगा। आज मैं सुन्दरमान की पत्नी हूँ, इसलिए आने को कहा है। पहले जब मैं घुट-घुट कर मर रही थी तब तो किसी को परवाह नहीं थी। माँ की तबियत अच्छी ही कब रही है! यह तो एक बहाना मात्र है। क्या सचमुच वे लोग माता-पिता हैं? क्यों अपनी बेटी को नौकरानी बना कर भेजा? मुझे नरक-सा जीवन बिताने के लिए उन्हीं लोगों ने मजबूर किया। नहीं, नहीं, वे लोग मेरे माता-पिता नहीं है। फिर भी मुझे जाना होगा क्योंकि मैं तो एक सराय हूँ। जिसको ज़रूरत पड़ेगी उसी की सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। अब नौकरानी से मैं सराय बनती जा रही हूँ। अपने पति के लिए भी मैं सराय हूँ। चन्द्रलक्ष्मी दासी थी तो सुन्दरमान की पत्नी सराय है। अब मेरा जीवन हर एक को आराम देने के लिए, सेवा करने के लिए है। इन्हीं विचारों में उलझी हुई मैं कपड़े बदलने के लिए उठी। शीशे में मेरा सारा रूप प्रतिबिम्बित हो उठा। भूरे होते हुए बालों को देख कर मेरा मन खिन्न नहीं हुआ। ढलते हुए यौवन की सूचना देने वाली आँखों की अथवा काले होते हुए लाल होंठों को मैं देखने लगी। उसके बाद अपने शरीर पर चिपटे हुए वस्त्रों और अंगों को जाँचने लगी। मुझे अपने आप से बातें करने की आकांक्षा हुई। मैंने कहा : तुम तो एक सराय हो। तुम्हारा अपना क्या है?

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

तुम्हारे यहाँ सभी कुछ दिन बसने आए हैं और फिर चले जाएँगे। नहीं ! नहीं ! मैं सुन्दरमान की पत्नी हूँ। शीशे के अन्दर वाली चन्द्रलक्ष्मी ने कहा : 'तुम तो उधार ली हुई हो। जिस तरह सराय में अचानक लोग आ जाते हैं उसी तरह सुन्दरमानजी भी तुम्हारे जीवन में आ गये हैं।' मेरी आँखें उनकी ओर चली गयीं। कितनी मस्ती और विश्वास में सोये हुए हैं। और इधर मैं बेकार की बातों में बहक रही हूँ। कहीं ऐसा न हो कि ये सचमुच ही मुझ सराय को छोड़ कर चले जाएँ। फिर तो मैं वीरान हो जाऊँगी। मेरे मन में एकाएक भय कौंध गया। मैं दौड़ कर उनसे लिपट गयी और चिल्लाने लगी—नहीं, नहीं अब कभी भी जीवन मेरे नज़दीक आकर कट नहीं सकता, सिकुड़ नहीं सकता, सूख नहीं सकता। उनकी नींद उचट गयी। कुछ देर तो वे विस्मित रह गये, फिर मुस्कराकर बोले—

—चन्द्र, तुम अभी तक सोईं नहीं।

—नहीं, सुन्दर भैया मुझे नींद नहीं आती।—अचानक मेरे मुँह से निकलगया। वे मुझे ताकते रह गये। गोपाल भैया के दोस्त होने के कारण मेरे मुँह से यन्त्रवत् 'सुन्दर भैया' शब्द निकल गये।

—क्यों, तुम्हें अब भी मेरे ऊपर विश्वास नहीं है ?

—नहीं, ऐसीं वात नहीं। आपके सिवा मेरा है ही कौन ? आप जब गोपाल भैया के यहाँ आते थे तो मुझे आपको भाई बनाने की इच्छा होती थी परन्तु आज आप मेरे पति हैं। चलो कुछ तो नाता हो ही गया। पिछले जन्म में आप का और मेरा सम्बन्ध रहा होगा।

पता नहीं, मैं क्या-क्या बोलती चली गयी'। मैं उनको पाकर बावली हो जातीं हूँ। एक पुरुष एक नारी से माँ की ममता, बहन का स्नेह और पत्नी का प्यार चाहता है। मैं उनको सब-कुछ दूंगी। शायद बहन बन कर मैं पत्नी का प्यार नहीं दे सकती थी। पर आज पत्नी बन कर सब-कुछ दे सकूंगी।

—पिताजी का पत्र तो पढ़ लिया है ?

अब वे पूरे जग चुके थे। उनके हाथ मेरे हाथों से खेल रहे थे। मैंने

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उनकी छाती पर अपना सिर रख दिया और कहा—मेरे राजा, इस बार घर नहीं चलोगे। एक बार घूम आएँ। यहाँ से मेरा जी ऊबने लगा है।

—ठीक है, हम लोग अगले महीने चलेंगे।

पर मैं खुश न हो सकी। उनका 'हाँ' कह देना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं जानती हूं कि उन्होंने केवल मेरे कहने पर 'हाँ' कह दी है, वरना इतना खर्च करना मूर्खता थी। नौकरीपेशे वालों को ऐसा नहीं करना चाहिए। मेरा गृहस्थिन का व्यक्तित्व उभर कर सामने आ गया।

—चन्द्र, मुझे भूख लगी है। कुछ बनाओ।

उनकी यह आदत ग़ज़ब की है। रात को इस तरह नींद टूटने पर भूख लग जाती है। खाना बनाने किचन में चली गयी। मुझे बहुत अजीब-सा लगा। सचमुच मैं दासी हूँ। मैं पत्नी नहीं, दासी हूँ। नौकरी करने वाले पुरुष की पत्नी दासी होती है। अगर मैं बिज़नेस करने वाले की पत्नी होती तो कितनी खुशी से रह सकती! नौकर-चाकर होते। परन्तु मेरा भाग्य इनके साथ बँधा था। हाँ, यह ठीक है कि बिज़नेस में उतार-चढ़ाव होता है लेकिन बिज़नेस तो अपना है और नौकरी परायी। वह तो पराये की खुशी और मर्ज़ी पर निर्भर है। मेरी एक सहपाठिन मनजीत कौर थी। वह सदा कहा करती थी कि अगर ज़िन्दगी का मज़ा लेना है तो बिज़नेसमैन से शादी करो। मुझे उसी क्षण विदेश में चारों तरफ से मनजीत कौर के शब्द सुनायी देने लगे। जब मैं अंडे उबाल कर और चाय बना कर उनके पास गयी तो वे फिर सो चुके थे। टेबुल पर पड़ी चेक-बुक पर नज़र पड़ी। मैंने उसे पलटा। उनका नाम मुझे घूर रहा था। मुझे लगा मैं इस चेक-बुक के अन्दर समा जाऊँगी, गुम हो जाऊँगी। मुझें कभी हँसने की इच्छा होती तो कभी रोने की। हाँ जी, मैं भी तो उनके नाम पर बैंक में जमा किया गया एकाउण्ट हूँ। फिक्स्ड डिपोजिट, जिसको इधर-उधर नहीं किया जा सकता। इसलिए वे मुझ को बहुत चाहते हैं। मैं उनके लिए एक महत्त्वपूर्ण फाइल की तरह हूँ, परन्तु सेफ में रखी रहने के कारण अस्तित्त्वहीन हो गयी हूँ। शायद घर जाने पर वे मुझे वहीं छोड़ आएँ क्योंकि मुझे माँ की सेवा करनी होगी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

क्या सचमुच वे मुझे छोड़ कर आएँगे ? तब तो मैं पहाड़ की चोटी पर खड़े अकेले वृक्ष की तरह अकेली हो जाऊँगी। अंधकार और प्रकाश के संगम में जिस प्रकार पहाड़ के अकेले वृक्ष की शाखा हवा में फड़फड़ाती है उसी तरह मैं भी केवल फड़फड़ा कर ही रह जाऊँगी। हो सकता है कि आकाशदीप की तरह आकाश और पृथ्वी के बीच लटक कर किसी के आने की प्रतीक्षा में अपना सारा जीवन गुज़ार दूँ। रात के गहरे होने के साथ-साथ उनकी नींद भी गहरी होती चली गयी। पता नहीं क्यों, मुझे आज उन पर अविश्वास-सा होने लगा था। जितना भी मैं उन विचारों को खदेड़ना चाहती थी वे उतने ही दृढ़ रूप में मेरे सामने भटकने लगते। फिर तो मेरा अकेला जीवन जनहीन सराय की तरह भग्नावशेष में बदल जाएगा। तब मेरे जीवन की राख मात्र तड़पती रहेगी। मैं नहीं जाऊँगी, कभी नहीं जाऊँगी। मैं यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगी। मैं जहाँ हूँ वही सुखी हूँ। मुझे अपने जीवन से ममता है, और किसी से नहीं। मनजीत कौर ऐसा ही कहा करती थी और अब भी उसके यही विचार हैं। उसने पत्र में लिखा था कि शादी के बाद वह अपने देश चली आई है। उसने एक बिज़नेसमैन से शादी कर ली थी। अपने स्वार्थ के लिए उसने परिवार की परवाह न की, परवाह न की एक ऐसे कलाकार की जिसने उसे प्रेरणा की देवी माना था। उसका कहना था कि नये जीवन को बीते जीवन से कट कर बहना चाहिए। उसके विचारों में सच्चाई की झलक स्पष्ट है। आज मैं भी मानती हूँ। वह कलाकार मनजीत को जीवन का सुख और वैभव नहीं दे सकता था। आज वह काफी सुखी है। जीवन का नाम स्वार्थ है। इसलिए मुझे अपने देश नहीं जाना चाहिए। मैं नहीं जाऊँगी। मैंने अपना निर्णय स्वयं को सुनाया। मैं मनजीत से काफी खुश थी क्योंकि उससे मुझे अच्छी शिक्षा मिली। माँ की तबीयत ठीक नहीं तो मुझे क्या ! मर ही जायेगी न ! मरना तो एक दिन सभी को है। मेरे जाने या न जाने से किसी की मौत नहीं रुक सकती। शादी-शुदा कन्या को अपने मायके का नहीं बल्कि अपने घर, अपने जीवन का अधिक ख्याल रखना पड़ता है। मैं उठ कर शीशे के सामने चली गयी। चाय ठंडी हो गयी थी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
अंडे उपेक्षित थे। मैं अपने को पहचानने में हिचकिचा रही थी क्योंकि आज मेरे मन में अपने संस्कार के विरुद्ध एक भावना पैदा हो गयी थी। देखते ही देखते मेरे मन में कमज़ोरी की छाया उभरने लगी। एक मन ने कहा : 'माँ को देखने जाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वह माँ जिसने तुम्हें जन्म दिया है। वह माँ जिसने...।' मुझे तब ऐसा लगा कि मनजीत का स्वर चीख कर कह रहा है : 'ममता में पड़ कर अपने पाये जीवन को कटने मत दो, फिसलने मत दो।' तब मैंने चिल्ला कर शीशे की छाया से कहा—

—चन्द्र, तुम को अपने देश नहीं जाना है।

—क्या हुआ ?

उनकी नींद उखड़ी ही नहीं बल्कि वे मेरे पास आ गये और आवेश में आ कर मुझे अपने बाहुपाश में बाँध लिया। उनकी प्यासी आँखें मेरे चेहरे पर थीं। पर मेरी आँखें उनके चेहरे से फिसल कर दीवार पर लटकी हुई एक तस्वीर में अटकी हुई थीं जिसमें वज्र-हिंसक अपनी शक्ति में विलीन था।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

दो

बिखरे हुए बादलों के नीचे मेरी बस्ती, मेरा शहर मेरे आगमन की सूचना पा कर मेरी अगवानी के लिए उत्सुक हो कर इन्तज़ार कर रहा था। नागबेली की तरह बहती हुई नदी, झुंडों में बने छोटे-छोटे घर और क़तारों में सिर उठाये हुए हिम-चोटियाँ और बिखरे हुए देवालय देख कर मेरी आँखों में हर्ष के आँसू छलक पड़े। विभिन्न छत वाले मन्दिर और स्तूप कभी मुझ से नीचे पड़ जाते और कभी ऊँचे दिखते थे। आखिर मैं अपनी धरती पर पहुँच चुकी थी। मैं विमान से बाहर निकली। मैंने एक बार जी भर कर अपने आकाश को देखा। खुली हवा को अपने फेफड़ों में भर लिया और अपनी धरती के स्पर्श से मुग्ध हो गयी। मुझ पर एक नशा-सा छा गया।

—चन्द्र, तुम आगे चलो, मैं सामान देखता हूँ।

तब मुझे लगा कि मेरे अपने भी मेरे साथ हैं। हमें लेने कोई नहीं आया था। आकाश, हवा और मिट्टी परिचित थी, पर सब चेहरे अजनबी लगे। सच कहूँ तो मैं अपने वतन में ही अजनबी हो गयी। मुझे लगा कि चारों तरफ कुछ सिकुड़न-सी है।

जब ऐरोड्रम से बाहर निकले तो ऐसा लगा कि मैं पहाड़ों में घिर गयी हूँ। संध्या की छाया घनी होने के साथ पहाड़ों का घेराव हमारे चारों तरफ कसता जा रहा था। पर इसमें आज एक नया आनन्द था, नया उल्लास था क्योंकि मैं एक नौकरानी होकर गयी थी और एक पत्नी होकर लौटी हूँ। उनके घर के लिए आज मैं नयी दुल्हन हूँ। क्या उनके परिवार को मेरा आना अच्छा लगेगा ? मैं अपने घर जाना चाहती थी। माँ को देखने की

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
तथा परिवार से मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी। पर उन्होंने ज़िद न छोड़ी। जीप सड़क पर दौड़ती जा रही थी। मेरा जीवन नये मोड़ पर आ पहुँचा था। कहीं मेरा अतीत वर्तमान से उलझ कर मेरे भविष्य को डगमगा न दे! मुझे चिन्ता सताने लगी। बेचैनी के साथ-साथ मैं सचेत होती चली गयी। उनकी माँ मेरे विषय में क्या सोचती होंगी? अगर उन्होंने मुझे स्वीकार न किया, तो? नहीं, उनकी माँ ऐसा नहीं कर सकती। जिसको स्वयं समाज ने खदेड़ने की कोशिश की वह मुझे क्यों खदेड़ेगा! आखिर शहर पहुँचते-पहुँचते रात धरती पर अच्छी तरह उतर चुकी थी। देखो न, वे भी आज कितने शान्त थे! चुपचाप वातावरण में मोटर की आवाज़ गूँजने से मेरी खिन्नता बढ़ गयी। शायद उनके मन में भी कोई आशंका पल रही है। मेरे अन्दाज़ से हम उनके घर के काफी नज़दीक आ गये थे। यह सड़क मेन रोड से बायीं ओर एक गली में मुड़ जाएगी और उसी गली के एक बड़े प्रांगण में बसे पच्चीस घरों में से एक उनका भी घर होगा। अपने पुत्र को देख कर उनकी माँ को कितना आश्चर्य होगा, कितनी प्रसन्नता होगी! और मुझे देख कर शायद उनकी खुशी उड़ जाएगी और, और...। मुझे सोचने में भी भय लगने लगा। तब तक मोटर प्रांगण के अन्दर पहुँच कर एक घर के सामने रुक चुकी थी। वे उतर भी चुके थे और मुझे उतरने को कह रहे थे। अँधेरे का होना मुझे बहुत भला लगा। हमें कोई देख नहीं रहा था। एक कोने में कुछ लोग बातें कर रहे थे।

मेरे संसार को बदले एक सप्ताह बीत चुका था। इन सात दिनों में जीवन के प्रति मेरा विश्वास काफी सशक्त हो गया। उनकी माँ—नहीं, नहीं, माँ को मुझ से कितनी जल्दी लगाव हो गया था। मैं उनकी बहू मात्र ही नहीं, बेटी भी बन गयी थी। मुझे उनसे बातें करने में काफी आनन्द आता था। मेरे साथ होने से उनका चेहरा खिला रहता था। उधर देखो, भाई-बहन को तो मुझसे प्यार है पर पिताजी और माताजी बहुत कम बात करते हैं। पिताजी मेरी शादी से खुश नहीं थे। वे जब भी बातें करते, उन की माँ के विषय में ही होतीं। उनकी माँ, मेरे पति की माँ पर लांछना

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

लगाने में उन्हें मज़ा आता था। उनके पिता उनकी माँ के दूसरे पति थे। पर इससे क्या हुआ ? लेकिन समाज को तो यही खटकता है। उनकी माँ जब जवान थीं तो विधवा हो गयी थीं। उनके लिए अपने बच्चों का पालन करना भी कठिन हो गया था। उन्हें एक सहारे की आवश्यकता महसूस हुई। जब समाज वालों ने जीना दूभर कर दिया तो उनके पिता ने उनसे शादी कर ली। इसमें उनका क्या दोष ? कहने के लिए तो हमारे समाज में विधवा-विवाह की परम्परा है पर विधवा के विवाह करने पर समाज वालों का मुँह खुल जाता है। बेकार की बातें होने लगती हैं। अगर औरत विधवा का रूप धारण कर वेश्या जैसी बन जाए तो समाज कुछ नहीं कहता ! उनकी माँ ने स्वयं मुझे सब कुछ बता दिया था क्योंकि उनको मालूम था कि समाज वाले इन बातों को मुझ से कहेंगे। उनकी माँ ने कहा था – 'बहू, तुमसे सारी बातें कह कर मुझे एक तृप्ति मिलती है।' उस दिन वे कह रही थीं—'होनी होकर ही रहती है। क्या कभी मुझे विचार आया था कि मेरा बेटा जो नौकरी के लिए परदेस गया है एक पत्नी ब्याह लायेगा ? इसमें किसी से डरने की ज़रूरत नहीं। टूटे हुए दिलों को तोड़ने की बात सोचना भी पाप है। तुम्हें मुझसे कभी डरना नहीं चाहिए। तुम मुझे अपनी सास नहीं, माँ समझना। मेरे लिए तुम बेटी से भी बढ़ कर हो।'

पता नहीं, इस नारी में इतनी ममता और इतना स्नेह कहाँ से आकर भर गया है ! ऐसी बातें करते समय मैं सदा उनके चेहरे में एक ज्योति की झलक देखती हूँ। मुझे स्वयं अपने भाग्य से ईर्ष्या होने लगी। आज वे अपने दोस्त के साथ घूमने चले गये थे। घर पर केवल मैं और उनकी माँ थीं। उनकी बातें सुनने में ही दिन बीत गया था। खिड़कियों से संध्या की किरणें छन कर आने लगी थीं। संध्या के कारण सामने का अमरूद का पेड़ भी उनींदा-सा दिख रहा था। मैं खाना बनाने के लिए उठी।

—मुझे भी आरती करनी है, परन्तु तुम से बातें करते रहना अच्छा लगता है।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उनकी माँ ने कहा। मैं दुविधा में पड़ गयी।

—बेटी, आज खाना यहीं बनाएँगे, सब-कुछ जाकर ले आओ। मैं भी तुम्हारी मदद करूँगी। मेरे जीवन का क्या ठिकाना! मैं अपनी बातें तुमसे कह जाना चाहती हूँ। मैं इन बातों को मन में सँजोए मर नहीं सकूँगी।

वे एकाएक रुक गयीं और उनके पिता की तस्वीर को देख कर कहने लगीं—

—बेटी, उनका बुलावा आ चुका है। मैं अधिक नहीं ठहर सकूँगी। अगली बरसात तक...।

अनायास ही मैंने उनके मुँह पर हाथ रख दिया और कहने लगी—

—माँ, आप क्या कहती हैं? क्या मेरा आना आप को अच्छा नहीं लगा? क्या...?

मैं इससे आगे कुछ न कह सकी क्योंकि उनकी आँखों से आँसू बरस रहे थे। मैं क्या कर सकती थी! चुपचाप ऊपर स्टोव और बर्तन लेने चली गयी। जब मैं कमरे में आई तो माँ चावल चुन रही थीं। फिर बातें न हो सकी। आँखों ने आँसू बहा कर दिल की बातों को सुखा दिया। वातावरण में एक ग़ज़ब का सूनापन छा गया। मेरा तो दम घुटने लगा। चुप-चुप से वातावरण को स्टोव की सूखी-सूखी आवाज़ तंग कर रही थी। मुझे खटका कि हमारी आवाज़ गुमसुम क्यों है। वे भी कुछ नहीं बोल नहीं रही थीं। मुझे भी बोलने का साहस न हुआ। इतने में ही सीढ़ियों पर उनके चढ़ने की आवाज़ आने लगी। माँ उठ कर आरती करने चली गयीं। वे कमरे में खाना बनता देख कर हैरान हो गये। मुस्कराते हुए मेरी ओर बढ़ने लगे। लेकिन मैंने आँखों ही आँखों से कमरे में माँ का होना समझा दिया। तब वे कहने लगे—

—माँ, मुझे भूख लगी है, कुछ खिलाओ न।

—बेटा, अब भी मुझी से कहोगे?

—माँ, यह तो मुझे खिलाती ही नहीं। आज आप ही कुछ खिला दो।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

—अच्छा बाबा, अच्छा, परन्तु मुझे आरती तो कर लेने दे ।

कमरे में उल्लास और प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी । माँ ने आरती शुरू कर दी । घंटी की ध्वनि वातावरण में गूँजने लगी । पर्दा होने पर भी आरती की ज्योति बाहर से दिखती थी । अचानक ही एक जगह पहुँच कर ज्योति रुक गयी । घंटी की आवाज़ भी कट गयी । माँ की आवाज़ भी सुनाई नहीं दे रही थी । शायद ध्यान करने में लग गयी थीं। खाना अभी बन नहीं पाया था । मैंने उनको चाय बना कर दे दी । चाय पीकर वे मेरे कामों में हाथ बँटाने लगे । माँ जब पर्दे के बाहर आयीं तो खाना तैयार था । खाना खाकर वे फिर बाहर चले गये । मुझे ऐसा लगा कि वे माँ से बातें करने के लिए खूब समय देना चाहते हैं । कभी-कभी तो मुझे बुरा भी लगता था लेकिन बाद में मुझे लगा कि उनकी बड़ी इच्छा है कि मेरे और माँ के बीच ग़लतफ़हमी न हो जाए । मुझे भी तो कुछ दिन माँ से बातें करनी चाहिएँ क्योंकि मैं ही उनकी सब-कुछ हूँ । मैं बर्तन माँजने चली गयी । बाहर चाँदनी छिटकी हुई थी । धरती पर उगे हुए पहाड़ कितने मस्त पड़े थे ! मानव ने भी मन्दिरों के चारों ओर फूल बिखेर दिये थे । चाँदनी में तलेजु भवानी का मन्दिर चमक रहा था । माँ भी मेरे पास ही चली आयीं । बर्तन माँजना खत्म हो गया था । हम छत पर बैठे बातें करने लगीं । वे अपने अतीत को मुझसे कह कर अपना जी हलका करने के साथ-साथ मुझ में भविष्य के प्रति विश्वास की भावना उँड़ेलना चाहती थीं । उनकी माँ अपने परिवार में एक सुन्दर कन्या थीं । उन्हें किसी बड़े घराने में 'केटी' (रखैल) बना देने की उनके पिता की बड़ी इच्छा थी । इसके लिए उनको एक जगह ले जाया भी गया जहाँ उन्होंने नाचना-गाना सीखा । पर उनका मन वहाँ नहीं लगता था । इसलिए एक दिन मौका पाकर भाग आयीं । उनके पिता को यह अच्छा नहीं लगा । इसके प्रतिकार स्वरूप उनकी इच्छा न होते हुए भी उनकी शादी उनके बाप की उम्र वाले व्यक्ति से कर दी गयी । वे उस बूढ़े के बच्चों की माँ बनती गयीं पर उनका टूटा दिल कभी न खिल सका । उनको अपने पति की मृत्यु पर भी सदमा नहीं हुआ ।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

धीरे-धीरे ठंड बढ़ने लगी। माँ जी को खाँसी का एक दौरा आया। वे पीड़ा से कराह उठीं। मैं उनको सँभाल कर कमरे में ले गयी। बिस्तर पर लेटते ही उनकी छटपटाहट बढ़ गयी। मुझे डर लगने लगा। मैं अकेली क्या करती ? मुझे लगा माँजी अपने जीवन से संघर्ष कर रही हैं। शायद वे होते तो कुछ करते। उनका न होना मुझे खटकने लगा। कहीं कुछ हो गया तो ? मैं खिड़की पर चली गयी पर वे नहीं आ रहे थे। पता नहीं कहाँ होंगे ?

—पानी ! बेटी, मुझे पानी दो।

मैं होश में आ गयी। मैं भी कितनी मूर्ख हूँ ! पानी देना ही भूल गयी हूँ। पानी पीते ही उनकी कँपकँपी छूट गयी। मैंने रज़ाई ओढ़ा दी और उनके शरीर को दबाने लगी। एकाएक सब शान्त हो गया।

—बेटी, घबरा गयी क्या ? मुझे ऐसा दौरा कभी-कभी आ जाता है। अब मैं ठीक हूँ। सुन्दर से कुछ न कहना। जाओ तुम आराम करो।

मेरे लिए एक विपत्ति टल गयी। माँ को छोड़ करनहीं जाना चाहिए। मैं उनसे कहूँगी कि इस बार माँ को वहीं ले जाया जाए। माँजी नींद के संसार में विचरने लगीं। मैं कुछ देर तो बैठी रही लेकिन फिर दरवाज़ा बन्द करके अपने कमरे में चली आयी। माँजी की बातें सोचते-सोचते मुझे नींद सताने लगी। वे अभी तक नहीं लौटे थे। मन में एक ही विचार बार-बार आ रहा था : क्या नारी को समाज में अपनी इच्छा से जीने का भी अधिकार नहीं ? क्या नारी सचमुच पुरुष की दासी मात्र है ?

जब वे आए तो रात का एक पहर बीत चुका था।

—माँ से जी-भर कर बातें कर ली ?

—कर तो लीं, पर आप बेटे होकर माँ के दर्द को नहीं जानते।

—इसीलिए तो तुम को लाया हूँ। शायद माँ का दर्द कम हो जाए।

—देखिये, मुझे यह मज़ाक अच्छा नहीं लगता।

—मैं मज़ाक कहाँ कर रहा हूँ ? मैं तो सत्य कह रहा था।

—अच्छा, एक बात मेरी मानियेगा ?

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

—एक बात क्या, सौ मान लूँगा। और है ही कौन जिसकी बात मुझे माननी पड़े।

—ठीक है, तो इस बार माँ भी हमारे साथ जाएँगी।

—देखो चन्द्र, वे नहीं जाएँगी। माँ को तुमसे अधिक मैं पहचानता हूँ। छोड़ो इन बातों को, मुझे नींद आ रही है।

कपड़े उतार कर वे बिस्तर पर लेट गये। देखते ही देखते बड़ी मस्ती से सो गये। यहाँ उनको लाइट भी डिस्टर्ब नहीं करती। मैं भी सोनेकी कोशिश करने लगी। पर नींद तो आती ही नहीं थी। कमरा साधारण-सा था। फर्श पर चटाई बिछी हुई थी। दीवारों पर लगे रंग झड़ चुके थे। एक ओर वर्षों पुराना कलेण्डर लटक रहा था। दो खिड़कियों के बीच एक शीशा टँगा था। दीवार के अन्दर दायीं ओर एक आलमीरा बनी थी। फिर भी अपने घर का अपना कमरा भला-भला-सा लग रहा था। मेरे लाइट ऑफ करते ही खिड़की से चाँदनी छनक कर उनके चेहरे से लिपट गयी। उनका सोता चेहरा मुझे हमेशा अच्छा लगता है। गोद में रख कर उनके बालों से खेलने की इच्छा होती है। पर उनकी नींद टूट न जाए, इसका डर मुझे वैसा करने से वंचित कर देता था। माँजी को अकेले नींद भी आती होगी? मुझे एक बार उनके कमरे में जाने की इच्छा हुई। पर मैं न गयी। मैं उनके पास बिस्तर पर लेट गयी। रात की जवानी में मैं जीवन पाकर खुश हो उठी। पर ठीक उसी समय मेरे मन में खटका लगा कि दया से प्राप्त जीवन कब तक मेरे हाथों में रहेगा? यह कभी भी मेरे हाथों से फिसल सकता है। बाहर कुत्ते के रोने की आवाज़ आयी। मैंने घबरा कर खिड़कियाँ बन्द कर दीं। कमरे को अंधकार में समाया पाकर पता नहीं क्यों मुझे कुछ संतोष हुआ और मैं धीरे-धीरे नींद की गोद में समा गयी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

तीन

कमरे के सामने पालतू कुत्ता कराह रहा था। वह अब नहीं बचेगा। उसकी हर आवाज़ में मृत्यु की झलक दिखायी पड़ती थीं और जीवन लाचारी में छटपटा कर रो रहा था।

उसी घर के दूसरे कमरे के सामने बड़ी बुआ की चाची बीमार पड़ी थीं। उस दिन उस घर में कोई नहीं था। मैं अपनी बड़ी बुआ से मिलने गयी थी परन्तु सारा परिवार चिड़ियाघर देखने गया हुआ था। कुत्ते की मौत नज़दीक थी। बुआ की चाची भी अधिक दिन नहीं बच सकतीं। एक मनुष्य, एक कुत्ता ! दोनों संसार से विदा हो रहे थे। उस दिन मुझे बुआ का घर एक अजीब-सा अजायबघर लगा। यों तो जब मैं आँगन में पहुँची तो लोगों ने बताया कि घर में कोई नहीं है। बुआ की चाचो का अस्तित्व मरने से पहले ही मर चुका था। पहले जब मैं इस घर में आती थी तो बुआ और यही चाची मेरा स्वागत करती थीं। आज मैं यही सोच कर आई थी कि मुझे देख कर उनको कितनी खुशी होगी ! क्योंकि उन्हें प्रत्येक नारी को, जिसका प्रेम-विवाह हुआ है, देख कर बहुत प्रसन्नता होती थी। उन्होंने भी प्रेम-विवाह किया था। मुझे ऐसा लगा कि मेरे स्वागत के लिए उठी हैं और बैठने के लिए कह रही हैं। मैं उनके नज़दीक चटाई पर बैठ गयी। उन की अतीत की बातों ने मेरे चारों ओर एक जाल-सा फैला दिया। अपने सात भाइयों की वे लाड़ली बहन थीं। लोगों के मना करने पर भी उन्होंने जो पुरुष उन्हें पसन्द था, उससे शादी की। मेरे देखते ही देखते ज्वर से ग्रस्त बुआ की चाची का चेहरा यौवन से भर गया। मुझे वहाँ एक ऐसा जीवन दिखने लगा जिसने प्रेम के लिए समाज से संघर्ष करके अपने को जला दिया हो। अचानक ही उनके शरीर में हलचल हुई। वे एक ओर पलट गयीं।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

अब वहाँ यौवन की छाया न थी। वातावरण के एकाकीपन से मैं तिलमिला उठी। मैंने अनजाने में आवाज़ लगायी।

—चाची, चाची !

पर मेरे सामने तो चाची चित्त पड़ी थीं। लगता था जीवन हार कर गिर गया है। कुत्ते के कराहने की आवाज़ सुनायी दे रही थी जो चक्कर लगा कर बुआ की चाची के साँस लेने की आवाज़ से टकरा जाती। इस तरह मुझे लगा कि उस घर के वातावरण में बुआ की चाची का जीवन लटक गया था। बगल के किसी घर में रेडियो गा रहा था—

रानी चरी कहाँ गयी शून्य भयो...
(रानी चली कहाँ गयी, शून्य हो गया...)

हवा का एक झोंका आया। खिड़कियाँ बंद हो गयीं। रेडियो का गीत भी नीरवता में विलीन हो गया। मैंने फिर ज़ोर से पुकारा—

—चाची, चाची !

अपने स्वर की शुष्कता से मैं स्वयं काँप गयी। मुझे भय लगने लगा। नहीं, नहीं, उनका चेहरा दमक रहा है। उनकी साँसें अभी भी वातावरण में चल-फिर रही हैं। डरते-डरते कहा :

—चाची, देखो तो सही, मैं चन्द्रलक्ष्मी आई हूँ।

ऐसा लगा कि उन्होंने पलकें खोल कर मेरी ओर देखा। भावहीन आँखें कुछ न कह सकीं। होंठ फड़क कर रह गये। मैं दुविधा में पड़ गयी। मुझे वहाँ से भागने की इच्छा हुई। मैं लम्बे-लम्बे डग भर कर बस-स्टाप पर चली आई। पर मुझे लगा कि कुत्ते की कराहट और बुआ की चाची की साँस मेरा पीछा कर रही हैं। आकाश में एक वायुयान गरजता हुआ जा रहा था। मुझे उसी क्षण विदेश के अपने संसार में जाने की तीव्र आकांक्षा हुई। सचमुच मैं अपने देश में कितनी परायी हो गयी थी। अपना समाज मेरे प्रति कितना अजनबी-सा व्यवहार कर रहा था ! जहाँ जाओ, सब खिंचे-खिंचे रहते थे। आखिर बस आ गयी। मेरे पाँव चुपचाप बस पर चढ़ गये।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

मुझे उस समय होश आया जब बस रानीपोखरी पहुँच चुकी थी। वे तो घर नहीं आए होंगे। माँजी से बातें सुनने की सामर्थ्य मुझमें नहीं रह गयी थी। इसलिए घर जाने की इच्छा न हुई। उनको भी देखो, दिन भर घर से ग़ायब रहते हैं। मुझे तो अपने साथ कहीं भी नहीं ले जाते। शायद राष्ट्रीय नाचघर में कोई नया कार्यक्रम था। काफी भीड़ थी। उस दिन मैंने माँ से मिलने का निश्चय कर लिया। फुटपाथ पर चलती-चलती मेरी नज़र रानी-पोखरी के अंदर चली गयी। पानी में आकाश और आकाश के आँगन में फैला हुआ बादल—किलकारियाँ मार रहे थे। मेरे क़दमों के साथ-साथ किनारे पर लगी फूलों की क्यारियाँ चल रही थीं। क्रॉसिंग आ गया। नया फुटपाथ—एक नयी ज़िन्दगी झाँक रही थी। एक बाज़ार-सा लगा था। कहीं लोग शर्बत पी रहे थे, कहीं पत्र-पत्रिकाएँ फैली हुई थीं, कहीं फलों की दुकानें थी तो कहीं मज़दूर ताज़ी-ताज़ी रोटियाँ खाने में मस्त थे। ज्योतिषी भी दूसरों का भविष्य बता कर अपना भविष्य बना रहे थे। एका-एक मेरा पथ मुड़ गया। मैं गलियों से गुज़रने लगी। गली के दोनों ओर दुकानें थी। रंग की दुकान, चूड़ियों की दुकान, बर्तनों की दूकान लेकिन मैं इनको देखने के मूड में नहीं थी। मुझे तो माँ के यहाँ पहुँचने की जल्दी थी। मैं अपने पथ पर अग्रसर होती जा रही थी। एक के बाद एक मेरी राहें तंग होती गयीं, उलझती गयीं। मैं एक ऐसी जगह आ गयी जहाँ का वाता-वरण लॉज और रेस्टुराओं से भरा था। मुझे लगा प्रत्येक लॉज में प्रत्येक रेस्टुराँ में मेरा देश फिसल रहा है, सूख रहा है। विदेशियों से भरे उस वाता-वरण में मेरा देश कराह रहा है, चीत्कार कर रहा है, तड़प रहा है। ऐसा लगने लगा कि मेरा देश एक ऐसा मन्दिर हो गया है जिसकी सजावट तो बढ़ गयीहै परन्तु जिसकी आत्मा-रूपी मूर्ति खो गयी है। वह एक देवहीन मन्दिर हो गया है।

—चन्द्रलक्ष्मी जी ! क्या आप घर जा रही हैं ?

अपने घर के बग़ल में रहने वाली पूनमाया चाची के इन शब्दों ने संकेत किया कि मैं अपने मुहल्ले में पहुँच गयी हूँ। मैं उसको देख कर मुस्करा

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

दी। उसी से मुझे मालूम हुआ कि मेरा भाई कुछ दिनों से लापता है। मैंने अपने को धिक्कारा। मैं भी कितनी स्वार्थी हो गयी हूँ कि पति के प्यार पर माँ-बाप और परिवार को भूल बैठी हूँ ! इन दिनों अपने परिवार के बीच मैं बहुत कम आती थी। मुझे लगता था कि उस परिवार में अपना-पन नहीं रहा है। मेरे भाई के विषय में एक बार उन्होंने भी व्यंग्य किया था कि वह सिनेमा-हाल के नज़दीक टिकटों का ब्लैक कर रहा था। क्या नहीं, इसको क्या हो गया है ? पिताजी को मदद देने की बात तो दूर रही बल्कि परेशानियाँ बढ़ा देता है। मेरे पाँव तेज़ी से चलने लगे। मुझमें एक बेटी की, एक दीदी की भावना जागृत हो उठी। एक कोने में पानी का नल था, वहाँ से घूमते ही मेरा घर सामने था। मैं दौड़ कर अपने घर में घुस गयी। जल बिना मछली की तरह पिताजी छटपटा रहे थे। सदा की तरह माँ शून्य में खोयी हुई थीं। कमरे में अँधेरा था, पर बत्ती नहीं जलायी थी। लगता था कि इस घर में कोई मर गया है। मैंने जब पिताजी का अभिवादन किया तो वे एकटक मेरी ओर अपरिचित भाव से देखने लगे। फिर एक ठंडी आह भर कर बैठने के लिए कहा। उनकी बातें टूटे हुए बाँध के पानी की तरह वातावरण में बहने लगीं। अपने छोटे भाई की करतूत सुन कर मैं हैरान रह गयी।

अभी उसकी उम्र ही क्या थी जो एक लड़की ले आया ! जिसका अपना कोई ठिकाना नहीं था उसने एक और भार लाद लिया ! मेरा मन हुआ अगर मुझे वह मिल जाए तो खूब पिटाई करूँ। मैंने पिताजी से पूछा—

—बहू कहाँ है ?

उनकी चुप्पी से मैं समझ गयी कि बहू घर में नहीं लायी गयी। माँ और पिता से पूछे बिना छोटे भाई का इस तरह बीवी लाना उनको पसंद नहीं था। इधर भाई को देखो, बीवी लाकर दस दिन भी साथ न रहा और ग़ायब हो गया। उस लड़की की क्या मनोदशा होगी ? वह जीवन पाने के लिए कितने विश्वास के साथ आई होगी और आज जीवन देने वाला ही

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
उसे छोड़ कर कहीं दूर भाग गया था। मुझे तो अनदेखी बहू से ममता हो गयी। मुझे नारी के भाग्य पर तरस आने लगा। अब वह क्या कहेगी ? परिवार वालों पर गुस्सा आ गया जो अभी तक उसे घर नहीं लाये थे। आखिर वह उस घर की बहू हो चुकी थी। मैंने डाँटते हुए माँ और पिताजी से कहा—

—आप लोगों को ऐसा अत्याचार नहीं करना चाहिए। आज के ज़माने में जाति-पाँति का ख्याल नहीं करते।

तब मैंने सोचा कि भाई तो कोई काम करता नहीं था और जब उसने देखा कि वह पत्नी को खिला-पिला नहीं सकता तो भाग गया। मुझे भाई पर भी गुस्सा ग्रा गया कि अगर वह मुझे आकर कहता तो मैं सब कुछ ठीक कर देती। लेकिन वह तो मुझसे उसी दिन से कतराता है जब से उन्होंने सिनेमा का टिकट ब्लैक करते देख लिया था। मेरी बातों से, पता नहीं, पिताजी को क्या हो गया। वे थके-हारे स्वर में कहने लगे—

—सब मुझे ही दोष देते हैं। उसने मुझसे तो कुछ नहीं कहा। जब वह भाग गया तब मुझे सब बातों का पता चला। पता नहीं, वह कहाँ है, क्या कर रहा है ..?

मैंने महसूस किया कि पिता का हृदय तड़प रहा है। सचमुच कभी-कभी तो उनका मन ज़िन्दा हो जाता था। वरना परिवार के झंझटों के कारण उनकी ज़िन्दगी की कब से मौत हो चुकी थी। उसी समय सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आवाज़ आई। मुझे लगा कि मेरा भाई आ रहा है। परन्तु मैंने देखा वे कुछ घबराये हुए हैं। मेरे तो होश गुम हो गये।

—सीढ़ियों से फिसल कर माँ गिर गयी है। मैंने तुमको कितना खोजा ! वह होश में तो आ गयी हैं लेकिन फिर भी तुम जल्दी चलो।

मैं किसी से कुछ कहे बिना उनके साथ घबराहट में चली आई। नारी का जीवन सदा दो फाँकों में बँटा रहता है। शादी के बाद नारी एक बार फिर नया जन्म लेती है। न चाह कर भी पुरानी चीज़ों से उसका कर्तव्य और लगाव कट कर रह जाता है। मन मार कर मैं अस्पताल चली गयी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
माँजी के पास एक नर्स थी।

—सुन्दरजी, घबराने की कोई बात नहीं। एक्सरे की रिपोर्ट आ गयी है। सिर पर कोई खतरनाक चोट नहीं लगी है।

हम दोनों की नज़र माँ की ओर उठ गयीं।

—अभी इनको नींद का इंजेक्शन दिया गया है।

मुझे घुटन-सी महसूस होने लगी। मैं एक ओर बैठ गयी। टेबुल पर रखा अखबार पढ़ने लगी। वियतनाम के युद्ध की खबर को देख कर मेरे मन में एक ग़ज़ब की कँपकँपी छा गयी। मुझे लगा मेरे चारों ओर युद्ध हो रहा है। मेरा देश भी वियतनाम जैसा हो गया है। हिमालय के टूटने से चारों तरफ खलबली मच गयी है।...मुझमें और सहने की शक्ति नहीं रह गयी। मैंने कितनी कोशिश की लेकिन फिर भी चक्कर आ गया। मैं चिल्ला ही पड़ी—सुन्दर! सुन्दर! मुझे बचाओ।—पता नहीं, मुझे क्या हो गया। मैं बग़ल की टेबुल पर लुढ़क गयी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

चार

सीधी सड़क ने मेरी नज़र को स्तूप की दृष्टि से एकाकार कर दिया। स्तूप के ठीक ऊपर पहाड़ी का एक टुकड़ा उड़ रहा था और पहाड़ी के इस टुकड़े पर चन्द पेड़ गीत गा रहे थे। तब एकाएक बादल के एक समूह ने अस्त होते हुए सूर्य के ताप से बचाने के लिए इस स्थल पर अपनी छतरी खोल दी। मुड़ कर देखा तो शहर की बस्तियाँ लैम्पपोस्ट की लीक पर इतराती दौड़ रही थीं। प्रकृति की ताल पर यौवन विभोर होकर नाच रहा था।

माँजी के स्वस्थ होने पर उस रात हारिती माता की पूजा में भाग लेने मैं अपने छोटे भाई और बहू के साथ स्वयम्भू जा रही थी। भाई और बहू अपने में मस्त थे। मैं अकेली विचारों में डूबी जा रही थी। वे मुझे छोड़ कर जाना चाहते थे। उनका कहना था कि विदेश में मेरी देखभाल कौन करेगा। वहाँ तो खर्चा भी अधिक होगा। इसलिए बच्चा जनने के बाद जाने की ज़िद कर रहे थे। लेकिन मेरा मन नहीं मान रहा था। सड़क के दोनों ओर खेत लहलहा रहे थे। सड़क पर इक्के-दुक्के लोग ही नज़र आते थे। वरना वातावरण काफी चुपचाप-सा था। कभी-कभार बन्दरों की आवाज़ आती तो कभी-कभी पर्वत की परिक्रमा में लगे लामा भिक्षु दिखायी पड़ जाते। ऐसा लगता था कि पेड़ के पत्ते भी धीरे-धीरे आपस में बात कर रहे हैं। वातावरण में एक ग़ज़ब की गंध फैल गयी। वहाँ एक हलचल थी। विभिन्न देशों के हिप्पीगण विभिन्न प्रकार की अवस्था में बिखरे हुए थे। मैं थक कर कुछ क्षण वहाँ रुक गयी। कुछ देर बाद भाई और बहू भी पहुँच गये। वे बढ़ते चले गये। उनकी उमंग उनका साथ दे रही थी। मैं भी पीछे-पीछे चल पड़ी। इस समय तक पूर्व में आकाश पर एक ज्योति खिल चुकी थी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

सारे वातावरण में एक अजीब-सा लावण्य छा गया। कुछ हिप्पी ऊपर से नीचे चले आ रहे थे। जब हम पर्वत की चोटी पर पहुँचे तो हारिती माँ की पूजा शुरू हो चुकी थी। मैंने चैत्य का एक चक्कर लगाया। पूजा चल ही रही थी। मैं एक ओर जा कर एकाग्रचित होने की कोशिश करने लगी। आसमान से बातें करने को उत्सुक धरती-पुत्र पर्वत की शृंखलाएँ चाँदनी में हलचल मचा रही थीं। चाँदनी की रज़ाई ओढ़े मनुष्य की बस्ती बड़ी लुभावनी लग रही थी। परन्तु उनके बिना मुझे यह सारा सौन्दर्य उखड़ा-उखड़ा-सा लग रहा था। नहीं, नहीं, मैं उनके साथ अवश्य जाऊँगी। मैं अकेली यहाँ कदापि नहीं रह सकती...। मैं गुम्बा में चली गयी। वहाँ भी मेरा मन चंचल हो उठा। तभी मैंने सुना कि लोग कह रहे थे : पूजा खत्म हो गयी है। देवी के दर्शन के लिए सबको बुलाया जा रहा था। मैं वहाँ पहुँच गयी। वहाँ केवल माँजी थीं। वे अभी तक नहीं आए थे। मेरा मन खिन्न होता जा रहा था। लगता था वे मुझे छोड़ कर चले गये हैं। मैं घर जल्दी लौटना चाहती थी। मेरा भाई और बहू माँजी से हँस-हँस कर बातें कर कर रहे थे। लोग भी अपने में मस्त भोजन कर रहे थे। उनके बिना तो मुझे सब बेगाना और वीरान-सा लग रहा था।

आखिर जब हम लौटने के लिए तैयार हुए तो दस बज चुके थे। एक बार फिर उस जगह के सभी मन्दिरों और स्तूपों का चक्कर लगाया और तब हम पहाड़ियों पर से उतरने लगे। जिधर देखो अंधकार की डरावनी छाया चाँदनी से छिप कर बैठी थी। एक जगह कुछ सरकने की आवाज़ आई। पत्थर के टीले को बिस्तर बना कर आसमान की चादर ओढ़ कर पूर्व की वेश-भूषा में पश्चिम की एक जोड़ी लेटी हुई थी। पूर्वी सभ्यता के वातावरण को पश्चिम की वासना ने दबोच लिया था। हमको ले जाने वाली मोटर पास में ही रुकी थी। जब मोटर नीचे पहुँची तो देखती क्या हूँ कि उस सूने वातावरण को चुनौती देती हुई एक हिप्पी बाला मस्ती में चली आ रही है।

भाई और बहू को छोड़ कर जब हम घर पहुँचे तो पृथ्वी पर आधी

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

रात उतर चुकी थी। घर में ताला लगा था। वे घर पर ही नहीं थे। मेरी चिन्ता बढ़ गयी। क्या सचमुच वे मुझे छोड़ कर चले गये हैं ? मेरी साँस फूलने लगी। माँजी बग़ल के घर में चाभी लेने गयी थीं। उनको चाभी लाने में देर हो गयी क्योंकि सब सो रहे थे। वातावरण को भी नींद आ चुकी थी। मोटर पुरोहित और अन्य लोगों को ले कर चली गयी। मैं अकेली थी।

माँजी चाभी ला कर ताला खोल चुकी थीं। पूजा का प्रसाद और फूल-माला ले कर मैं पीछे चल पड़ी। माँजी उनको गालियाँ देती हुई सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं। माँजी को छोड़ जब मैं कमरे में गयी तो देखा कि वे तो वहाँ सो रहे हैं। पर वे पहुँच कैसे गये ? तब मुझे हँसी आ गयी। इनके बचपन की आदत याद आ गयी। जब ये उत्सवों के दिन नाच देख कर रात को देर से आते थे तो खिड़कियों से चढ़ कर अपने कमरे में चले आते थे। आज भी इन्होंने उसी पुरानी आदत का सहारा लिया। जैसे भी हो, आखिर वे मेरे पास थे। मैंने टीका लगा कर फूलमाला पहना दी तो वे घबरा कर उठ गये। पता नहीं क्यों, मुझे उन पर गुस्सा आ गया। मैंने ज़रा तन कर पूछा—

—आप आए क्यों नहीं ?

—मैं आने ही वाला था तो तुम्हारे गोपाल भैया आ गये।

गोपाल भैया के नाम से मेरे दिल पर एक धक्का-सा लगा। मैं उनके घर एक बार भी नहीं गयी। यही भैया थे जिन्होंने मुझे उनके नज़दीक ही नहीं, अपना बनाने में सहयोग दिया।

—तो क्या आप उनके यहाँ गये थे ?

—जा तो मैं वहीं रहा था पर न्यूरोड पर पुरु और रजनी से भेंट हो गयी और उन लोगों ने हम दोनों को अपने घर जाने को बाध्य किया।

मैं सन्न रह गयी। पर मैंने कुछ नहीं कहा। अपने कपड़े बदलने लगी। जब मैं सोने के लिए बिस्तर पर लेटी तो वे फिर नींद में खो चुके थे। उनकी साँसों से शराब की गन्ध भी आ रही थी। अच्छा, तो आज इनका डिनर भी जम कर हुआ है ! क्यों नहीं होगा ? आखिर रजनी के घर गये थे।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

रजनी के नाम से मेरी आँखों के सामने न्यूयार्क की घटना घूमने लगी। रजनी के बड़े भाई पुरुषोत्तम, गोपाल भैया और वे तीनों स्कूल के समय से एक ही क्लास में पढ़ते थे। इसी नाते जब रजनी न्यूयार्क आई तो हमारे ही यहाँ रही थी। रही तो तीन ही दिन परन्तु उसके स्वभाव और विचारों को देख कर मैं हैरान रह गयी। वह किसी स्कूल में टीचर थी और उसी की ट्रेनिंग खत्म करके घर लौट रही थी। उस दिन शनिवार था। रात को हम तीनों को एक रिसेपशन में जाना था। इसलिए दिन काटने के लिए हम चिड़ियाघर चले गये। रजनी की बातें बहुत पुराने तौर-तरीके की होती थीं। सचमुच हम तो उसकी आदर्शभरी बातों से चकित हो गये थे। कभी मैं सोचने लगती कि इसके ख्यालात केवल ख्यालात तो नहीं हैं? उनको भी शायद ऐसा ही लगा। उन्होंने आखिर कह दिया : 'रजनी, तुम्हारे इन विचारों से मुझे लगता है तुमने यहाँ आने का मज़ा नहीं लिया।'

रजनी एकाएक तन कर कह बैठी : 'आप तो मेरे बड़े भाई जैसे हैं। आपको मुझसे ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। अगर आगे कभी की तो अच्छा न होगा।' उनकी अवस्था ऐसी हो गयी जैसे भरी सभा में किसी ने चपत लगा दी हो। रजनी की बात मुझे खूब जँची थी। उनको ऐसी बात नहीं करनी चाहिए थी। वातावरण में एक तनाव छा गया। शायद इसी कारण रिसेपशन में जाने के लिए वह आनाकानी करने लगी। लेकिन हम मना कर ले गये। ऐसे तो मुझे भी रिसेपशन और शोर आदि से घबराहट होने लगती है पर चली जाती हूँ। समाज में रह कर समाज के उसूलों को कबूल करना ही पड़ता है। पर हम जहाँ भी हो, घंटा-भर रह कर लौट आते थे। साँप भी मर जाए, लाठी भी न टूटे। जब मैं लौटने की इच्छा से उनको खोजने लगी तो मैंने देखा कि एक ओर वे और रजनी हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। रजनी के प्रत्येक अंग और प्रत्येक भाव में उन्माद भरा था। उसकी आँखें मेरे उनको निगलने को लालायित थीं। रजनी के इस परिवर्तन को देख कर मैं अवाक् रह गयी। दिन में कितना नखरा कर रही थी, अब कितनी मस्त और बेफिक्र है! मुझसे न रहा गया। मैं उनके पास चली

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
गयी। रजनी ने मुझे देखते ही कहा : 'देखो, आपके पति ने मुझे कोक के नाम पर 'शेरी' पिला दी।'

उसका स्वर भी वासनामय था। और फिर उनसे ही बातें करने लगी। वे भी प्रसन्न थे। मैंने वहाँ से हटने में ही भला समझा। और ये आज उसी रजनी के यहाँ गये थे। क्यों नहीं जाएँगे ? बासी फूल किसी को पसन्द नहीं आता। अधिक दिन साथ रहने पर लोगों को घर से नफरत हो जाती है, तो एक औरत का क्या मूल्य ? वह तो एक सराय है, नौकरानी है, और अब तो मैं माँ बनने वाली हूँ। अब उनको मेरे प्रति क्या आकर्षण रहेगा ! पुरुष को बच्चे की माँ की नहीं, बल्कि पत्नी की आवश्यकता होती है। माँ के प्रति स्नेह और प्रेम की भावना होने पर भी उसको पत्नी की ज़रूरत होती है। उसकी भूख और प्यास की शान्ति पत्नी में ही निहित होती है। पुरुष के लिए नारी तो बस एक पत्नी, एक नौकरानी, एक सराय मात्र है। रात गहराती जा रही थी। बाहर चाँदनी फैली हुई थी, लेकिन मेरे अन्दर एक घना अंधकार छाया था। पुरुष के मन में परिवर्तन होने में क्या देर ! फिर उन्होंने मुझसे शादी तो दया करके ही की थी। मुहब्बत और प्रेम की बात तो दूर, उनको मुझसे कोई लगाव भी न था। सचमुच हम दोनों की शादी आवेश में हुई थी। आवेश का ठंडा हो जाना स्वाभाविक है। दया के आधार पर जीना भी मुश्किल है। इसलिए उनकी इच्छा के विरुद्ध उन पर भार नहीं बनना चाहिए। पर मेरे अंदर पलता शिशु इसको सहने के लिए तैयार नहीं था। तब विरोध की भावना जूझने की भावना में बदल जाती। मैं चाह कर भी हार मानने को तैयार नहीं हो पाती। रजनी जैसी कितनी आएँगी-जाएँगी पर मैं तो उनके बच्चे की माँ बनने वाली हूँ। मेरा विश्वास एक बार फिर लड़खड़ा उठा। शायद इसी बच्चे के कारण वे इन दिनों मुझे कहीं नहीं ले जाते और मेरे प्रति उनके स्वभाव में पहले जैसी उत्सुकता और उत्साह नहीं रह गया है। मेरे साथ हमेशा शिथिल-से लगते हैं। इसी कारण तो आज अपनी माँ की पूजा में नहीं आए। जब इनको मुझे ले जाने की इच्छा ही नहीं, तो मुझे इनके जीवन पर भार बन कर नहीं जाना

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

चाहिए। पर मैं यहाँ रह कर क्या करूँगी ? कैसे दिन काटूंगी ? फिर घर में और कोई भी तो नहीं है। माँ जी और मैं—दो औरतें। समाज वाले क्या सोचेंगे ! शायद चरित्र पर भी ताने कसेंगे। नारी को अकेली पा कर समाज ने सदा ऐसा ही व्यवहार किया है। उसका जीना मुश्किल कर दिया है। नारी पुरुष बिना बेसहारा हो जाती है। समाज की भूखी नज़रें उसे झपट कर खाने के लिए लालायित हो जाती हैं। मैं जाऊँगी...इनके साथ ही जाऊँगी। लड़ कर भी जाऊँगी। मेरे मन में तो तूफान उठा है और वे कितनी मीठी नींद सो रहे हैं ! मुझे गुस्सा आ गया। उनको झकझोर कर जगा दिया। उन्होंने आश्चर्य से कहा—क्यों, क्या हुआ ?

—देखिए मैं आपके साथ ही जाऊँगी।

—क्यों बच्चों की-सी बात करती हो। मैं तुम्हें केवल चन्द महीनों के बाद ही आने को कह रहा हूँ।

—नहीं, आपको मुझे अपने साथ ही ले जाना होगा।

अपने स्वर की दृढ़ता को देख कर मैं स्वयं चकरा गयी। उन्होंने कुछ नहीं कहा। चुपचाप लेटे रहे और अँगड़ाई ले कर दीवार की तरफ मुड़ गये। मेरे मन में एक टीस उठी। इनको मुझे ले जाने की क़तई इच्छा नहीं। यह क्यों ? तब मैंने गुस्से में कह ही दिया—

—मुझे मत ले जाइएगा। अपनी रजनी को ही ले जाइए।

—चन्द्र, तुम भी कैसी बातें करती हो ?

मैंने उनकी बात का जवाब नहीं दिया। कमरे में एक तनाव छा गया। वातावरण में नीरवता और नीरसता भर गयी। चुपचुप-सी गहराती रात में मुझे लगा, मेरा जीवन भी चुप हो गया है। फिर एकाएक कमरे में मेरी सिसकियाँ फूट पड़ीं।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

पाँच

लोगों को सच्ची बात कहने में डरने की क्या आवश्यकता है ? गुस्सा करना भी अच्छा नहीं है। मैं उनसे नाराज़ नहीं हूँ लेकिन उन्होंने मुझसे झूठ क्यों बोला। उनको यह कहने की क्या ज़रूरत थी कि उनको इतवार को भी आफिस जाना है और यह कह कर फिर कहीं और चले गये ? मैं उनको रोकती कब हूँ ? वे जो चाहें करें। मैंने कभी उन पर अपना अधिकार नहीं जमाया। हाँ, अपने देश से यहाँ आने के लिए मैंने ज़िद की थी क्योंकि मैं लाचार थी। पर उन्होंने इस घटना को बड़ी गंभीरता से लिया और मुझसे कटे-कटे-से रहने लगे। कभी बाहर चलने को भी न कहते और जब मैं कहती तो जवाब देते : अकेली चली जाओ। मुझे कितनी बार अकेले शॉपिंग करने जाना पड़ा। अपने देश से क्या गयी, मेरे जीवन में एक ऐसा अलगाव आ गया जिसको सोच कर भी मैं बार-बार काँप जाती हूँ। पार्क में जब अपने बच्चे को घुमाने ले जाती तो मुझे रुलाई आ जाती क्योंकि औरों के साथ उनके पति भी आते थे। पर मैं तो जैसे बच्चे की माँ नहीं, एक नौकरानी हूँ जिसका मालिक और मालकिन कहीं व्यस्त हों। फिर भी मैं सब सहन कर रही थी। अब तो यह झूठ भी बोलने लगे हैं। जब उन्होंने कहा कि इतवार को मुझे आफिस जाना है तो मुझे कुछ खटका था परन्तु कह क्या सकती थी ! मैं तो उनकी दया की पात्र थी। आखिर जेनी के फोन ने मुझे बता दिया कि वे अपनी सेक्रेटरी के साथ कोनी टापू पर सैर करने गये हैं। पर इसमें छिपाने की क्या बात थी ? उन्होंने मुझसे झूठ क्यों बोला ? क्योंकि उनके मन में पाप था। मैं उनको पापी नहीं बनाना चाहती। मैं उनको बुज़दिल बनाना नहीं चाहती। उन्होंने मुझे जीवन दिया है, मैं उनकी बहुत आभारी हूँ। पर...।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

बेड-रूम में सोया बच्चा रो पड़ा, मेरा बच्चा, मेरा बेटा ! मैं दौड़ कर चली गयी। वह नींद में मस्त था। शायद सपने में रोया होगा। मेरे जीवन पर तरस खा कर, भगवान के बताने पर वह रोया होगा। मैं पलंग पर उसकी बग़ल में बैठ गयी। पालने के छोटे-से संसार में अपने बच्चे को मस्त देख कर मुझे एक बात याद आ गयी कि सीमित परिधि के अंदर रहने से आदमी अधिक सुखी हो सकता है। अपने देश से क्या गयी कि मेरा जीवन ही फिसलने लगा। यह अब कट तो सकता नहीं, क्योंकि अब मैं एक बच्चे की माँ हूँ। अब मेरा भी अपना बेटा है, जीवन है। उनका स्वभाव काफी बदल गया है। मेरे प्रति उनकी ममता और प्रेम में काफी परिवर्तन आ गया है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि हम पति-पत्नी हैं ही नहीं। मेरे मन में भी उनके प्रति शंकाएँ होने लगती हैं। पर ऐसा क्यों हो रहा है, हम इस स्थिति में कैसे पहुँच गये, इसे सोच कर मैं हैरान हो जाती हूँ। इन बातों को सोचते-सोचते मैं विक्षिप्त-सी हो कर रो पड़ती हूँ। और कभी यह सोचती हूँ कि इनसे साथ न आती तो अच्छा होता। शायद उनकी बात न मानने पर उनको सदमा पहुँचा है। इस तरह खिंचे-खिंचे रहने से तो अच्छा था कि कुछ दिन जुदा रहते। जेनी का कहना ग़लत भी तो हो सकता है कि वे पहले आफिस गये हों और फिर वहाँ से सेक्रेटरी के साथ घूमने चले गये हों। बेकार में मुझे उन पर शंका नहीं करनी चाहिए। इस तरह शक करने से मैं स्वयं तबाह हो जाऊँगी। मैं उठ कर खिड़की पर चली गयी।

सागर की छाती को चीरते हुए एक मोटर बढ़ रही थी। नीले सागर पर सफेद मोटर-बोट को देख कर मुझे बचपन में खुली छत पर पानी से भरे तसले में कागज़ की नाव बना कर खेलने की घटना याद आ गयी। सचमुच मनुष्य का जीवन कागज़ की नाव की तरह है। मेरा जीवन भी कागज़ की नाव जैसा है। मुझे चुपचाप रह कर सब सहना पड़ता है। हवा के रुख के साथ बहना पड़ता है। उनके परिवर्तन के साथ मुझे बदलना पड़ता है। उनका पहले का प्रेम और विश्वास मैं खो चुकी हूँ। उस दिन पार्टी में एक पुरुष से ज़रा बातें करने लगी तो घर आ कर कितनी डाँट सहनी पड़ी !

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
लेकिन अपनी हँसी का व्यापार कर मैं सन्तोष कर लेती हूँ। पहले तो उनको मेरा हँस-हँस कर बातें करना बहुत भाता था। अब तो हँसी भी उनकी इच्छा पर बिखेरनी होगी। इस पर एक दिन मैंने टोक दिया तो कहने लगे जो चीज़ मेरी है वह केवल मेरी रहेगी। हाँ जी, नारी सचमुच दासी मात्र है। उसकी अपनी इच्छा नहीं होती। नारी तो एक सराय है, पुरुष चाहे तो उसे आबाद भी कर सकता है और बरबाद भी। नारी का जीवन कागज़ की नाव मात्र है। मैं स्वयं अपने भाग्य को कोसने लगी। मेरे मन में विद्रोह की आग सुलगने लगी। सदियों से शोषित नारी का व्यक्तित्व अब उबल रहा था। मुझे लगा कि अब बहुत जल्दी तूफान उमड़ पड़ेगा। आज तक पुरुष ने जो कहा, नारी पालन करती आयी है और पुरुष ने इसे नारी की सरलता नहीं, कमज़ोरी और स्वभाव मान लिया! अब मेरा मान अपने को दासी और सराय कह कर और अधिक सहने को तैयार नहीं था। मेरे सहने से उनका मन ठीक ही कहाँ हो रहा है? वे सोचते होंगे कि शायद इसी का दोष है इसीलिए तो चुप हो जाती है। आने दो आज, मैं उनसे लड़ कर रहूँगी। सेक्रेटरी के साथ घूमने का मज़ा चखाऊँगी। नहीं तो मैं भी अपनी इच्छानुसार करूँगी। जो मन में आएगा करूँगी। हवा का रुख जिधर होगा उधर ही बह जाऊँगी।

सागर के किनारे सड़क कतरा कर जा रही थी। सड़क के इस पार दरख्त और पौधों पर बसन्त की बहार खिल चुकी थी। बिना 'हुड' की एक कार में मॉडर्न कामदेव और रति दौड़े जा रहे थे। जीवन की मस्ती को देख कर मुझे अपने जीवन पर करुणा आ गयी। अपने जीवन और विचारों का ठंडापन देख कर घृणा हो गयी। मैं खिड़की से लौट पड़ी। कमरे का वातावरण देख कर लगा, मुझे किसी ने बन्दी नहीं बनाया है। मैं स्वयं बन्दी बन गयी हूँ। परम्परा और आदर्श के नाम पर मैंने स्वयं एक लक्ष्मण-रेखा खींच रखी है। मैं इसको तोड़ देना चाहती थी पर मेरा बेटा इसे झकझोरने नहीं देता। एक नया घेराव ज़िन्दगी में आ गया था। जीवन में एक नया मधुर भार आ गया। यह बच्चा कुछ घंटों तक नहीं जगेगा और जग भी

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

गया तो क्या ! पेट तो भरा ही है। फिर चल-फिर भी नहीं सकता। पालने में पड़ा रहेगा। कुछ देर दुविधा में अटकी रही पर आखिर बाहर चलने को तत्पर मन की विजय हुई। मैं बाहर चली आई। इतवार होने के कारण भीड़ नहीं के बराबर थी। पर मुझे स्वच्छन्द हवा में आनन्द आने लगा। समुद्र की हवा में बसन्त की महक छायी हुई थी। मैं एकाएक जवान हो गयी। पार्क में विभिन्न जोड़ियाँ जीवन का आनन्द ले रही थीं। मैं अकेली न होकर भी अकेली थी। वे भी अपनी सेक्रेटरी के साथ इसी तरह का आनन्द ले रहे होंगे। मन को एकाएक काठ मार गया। मेरे पैर पार्क का चक्कर लगाने लगे। सब चेहरे अपरिचित थे। मेरी मौजूदगी का किसी को आभास न था। जैसे मैं कोई नहीं हूँ। लेकिन मुझे तो समय काटना था। कुछ क्षण के लिए घेराव की ज़िन्दगी से मुक्ति प्राप्त करनी थी। आजकल वे अपनी 'पे' भी मुझे नहीं देते। पूछने पर जवाब मिलता है कि बच्चे के भविष्य के लिए बैंक में जमा करा दी है। ठीक ही तो कहते हैं। फिर कमाई भी उनकी है, मेरी नहीं। परिवार में कमाई करने वाले की इच्छा ही ताक़त-वर होती है। यह तो संसार का नियम है। मैं दूसरे की कमाई खाने वाली एक नौकरानी, एक सराय मात्र हूँ। अगर मुझे इस पद से छुटकारा पाना है तो कुछ काम करना पड़ेगा। एकाएक मुझे लगा कि जेनी की सूचना ग़लत है। वे आफिस से थक कर आएँगे। मुझे घर जाना चाहिए। मैं उनकी पत्नी हूँ। मुझे उनके लिए खाने का इन्तज़ाम करना है। बच्चा भी जग गया होगा। मैं तेज़ी से अपने अपार्टमेंट की ओर आने लगी। लिफ्ट पर चढ़ कर जब मैं दरवाज़े के सामने पहुँची तो कमरे के अन्दर फोन टनटना रहा था। शायद उनका हो। फोन के नज़दीक पहुँचते-पहुँचते ही आवाज़ बन्द हो चुकी थी। मेरे मन को एक धक्का-सा लगा। नहीं, उनका फोन नहीं होगा। किसी और ने किया होगा। कहीं जेनी मे तो फिर फोन नहीं किया ? इन दिनों जेनी हमारे यहाँ बहुत कम आती है। उसकी तबियत ठीक नहीं रहती, उसमें भी तबदीली आ गयी है। सबकी अपनी-अपनी समस्या होती है। बेड-रूम में गयी तो बच्चा अब भी सो रहा था। उस बेचारे को क्या पता कि

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उसकी माँ........? फोन की घंटी फिर बज उठी। उनका ही फोन था। वे कुछ दोस्तों के साथ आने वाले थे। नहीं, वे अब भी मुझे प्यार करते हैं, वरना फोन क्यों करते? नहीं, उन्होंने फोन इसलिए किया है कि कहीं मैं बाहर घूमने तो नहीं चली गयी। मुझ पर विश्वास न होने के कारण ही उन्होंने फोन किया है। मैं चाय और नाश्ता तैयार करने किचन में चली गयी।

संध्या की छाया पृथ्वी पर फैल चुकी थी समुद्र की शीतल हवा खिड़कियों से आने लगी, पर वे नहीं आए। बच्चा भी आज कितना सो रहा था! मुझे जाकर उसे उठाने की इच्छा हुई। उससे मन बहलाने की चाह हुई। मेरा बच्चा, मेरा बेटा, मेरा संसार! मैंने कमरे में जाकर उसको देखा तो वह उठ चुका था और अपने छोटे से संसार में मस्ती से खेल रहा था। फिर फोन की घंटी बजी। बच्चे को लेकर ही चली गयी। फोन उनका ही था। उनके दोस्त नहीं मान रहे हैं इसलिए वे भी डिनर बाहर ही करेंगे। यह सब बहाना है। अपनी सेक्रेटरी के साथ रंगरेलियाँ मना रहें हैं और बहाने बना रहे हैं। क्या यह भी जीवन है? ऐसे जीने से तो मरना अच्छा। अब मुझे मर-मर कर जीना अच्छा नहीं लगता। पता नहीं, बच्चे को क्या हो गया? वह एक दम चीख पड़ा। मुझे लगा यह बच्चा भी पराया है। इस संसार में मेरा अपना कोई नहीं। प्रेम, प्यार, ममता सब ढोंग है। रोते बच्चे को पालने में लिटा दिया। मुझे लगा, उस कमरे की एक-एक वस्तु मुझ पर व्यंग्य कर रही है। इधर तो मैं उनकी बाट जोहती रहूँ और उधर वे किसी के साथ मज़े उड़ाएँ। यह नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। मेरा भी कोई अधिकार है। मुझे भी अपनी इच्छा से जीने का अधिकार है। हाँ, अब उनके अथवा किसी के लिए नहीं, अपने लिए जीना सीखूँगी और जीऊँगी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

छह

अपने जीवन के परिवर्तन को देख कर मुझे स्वयं विश्वास नहीं होता। माँजी का मन बहलाने के लिए मेरा बेटा अब मुझसे दूर चला गया था। वे तो कभी भी पास न रहे। मैं उनके पास रहना चाहती थी। पर अब पास रह कर भी मैं उनसे दूर होती जा रही थी। मेरे जीवन का दायरा बढ़ चुका था। मैंने बहुत-से लोगों से दोस्ती कर ली थी। उनको इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। मुझे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हम साथ रह कर भी अलग हो गये थे। मेरा जीवन एक राह से फिसल कर दूसरी राह पर चलने लगा। यह सब कैसे और क्यों हुआ, मुझे स्वयं पता नहीं। लेकिन इसको अब रोका नहीं जा सकता था। वे भी रोक नहीं रहे थे, और मैं भी रुकने को तैयार न थी। इसके कारण अपने देश वालों के बीच हमारा आना-जाना भी घटता गया। सब हमसे दूर होते चले गये। यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ। किसी के ताने नहीं सुनने पड़ते थे। पर मेरे मन को शान्ति नहीं मिलती थी। क्योंकि न मेरा जीवन सुखी था और न उनका। कभी-कभी मुझे उन पर दया भी आ जाती थी। बेकार मुझ पर दया करके उन्होंने अपना जीवन एक भार बना लिया, पर मैं क्या कर सकती हूँ ? क्या उनके जीवन से मेरा निकल जाना अच्छा होगा ? पर मुझे ऐसा लगता है कि इसको भी वे सह न सकेंगे। मुझे तो इस समस्या का कोई समाधान नहीं दीखता। और जीवन सुलझने की बजाय उलझता जा रहा था। अब तो हमारे बीच रही-सही कड़ी मेरा बच्चा भी दूर चला गया था। परेशानी के कारण उनका पीना बढ़ गया था। मैंने भी अपने मन को हलका करने के लिए एक-दो बार पी ली थी। परन्तु पीने के बाद मेरा मन और चंचल हो जाता था। जिस चीज़ को भूलने की कोशिश करती उसी पर

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
सारा ध्यान अटक जाता था।

आखिर हार मान कर मैंने वह रास्ता अपनाने का निर्णय किया जिसे मुझे नहीं अपनाना चाहिए था। मैंने उनके एक दोस्त के साथ अपने सम्बन्ध को गहरा करना शुरू कर दिया। वे हमारे यहाँ बराबर आने लगे। मैं उनके मन में ईर्ष्या की आग जलाना चाहती थी पर उनको कुछ नहीं होता था। घृणा की बजाय मुझसे अधिक प्यार करने लगे। लेकिन यह प्यार नहीं, दया थी। वे तो मुझे प्यार करना जानते ही नहीं। मेरे दिल में उनके लिए मात्र दया है। इस पर भी वे कुछ उखड़े-उखड़े-से, पर फिर भी संयत रहने लगे।

उस दिन रात के बारह बज चुके थे। वे नहीं लौटे। पता नहीं कहाँ गये थे? उन दिनों हम एक-दूसरे से पूछते तक न थे। अपनी-अपनी पसन्द की छूट थी। शायद मेरी आँख लग गयी। मैंने एक सपना देखा। एक पिंजड़े में एक पक्षी कैद था। एक दयावान ने उसको स्वतन्त्र कर दिया। लोहे की सलाखों के कारण उसके पंखों में ज़ंग लग चुका था। इसलिए वह उड़ नहीं पा रहा था। उड़ता तो फिर गिरता और फड़फड़ा कर रह जाता। दूर आकाश में एक बाज़ उसे झपटने के लिए नीचे उतरने लगा ...।

भय के मारे मेरी नींद खुल गयी। मेरी बगल में वे सोये हुए थे। उन्होंने कपड़े भी नहीं उतारे थे। फर्श पर कै की हुई थी। मुझे चक्कर आने लगा। मैं ड्राइंग-रूम में चली आयी। वहाँ एक तमाशा था। सारी चीजें बिखरी हुई थीं। तस्वीरें टूटी हुई थीं। उन्होंने यह सब क्यों किया? इतना होने पर भी मेरी नींद नहीं टूटी। मुझे लगा, सारा कमरा मुझ पर हँस रहा है। नहीं, वे मेरे पति हैं। मुझे उनको सँभालना होगा। मैं फिर बेड-रूम में चली गयी, फर्श को साफ किया। उनके कपड़े और जूते उतारे। इस बीच शायद उनको होश आ गया क्योंकि जब मैं लाइट ऑफ करने लगी तो उन्होंने उठ कर मुझे आलिंगन में ले लिया। उनके चेहरे पर हँसी की झलक दिखाई दी। मुझे लगा कि एक बार फिर जीवन पहले रास्ते पर आ गया है। नहीं, यह मायाजाल है, उनकी हँसी एक फरेब है। अब फिर मुझे

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

ऐसे धोखे में नहीं फँसना चाहिए। ज़िन्दगी ने जो नया मोड़ ले लिया है उसी लीक पर चलने में फ़ायदा है। रात तेज़ी से फिसलती जा रही थी। पर मेरा जीवन अब अधिक फिसलने के लालच में फँसने को तैयार न था।

आखिर सवेरे ने मेरी ही बात को ठीक बताया। उनके स्वभाव में वही पुराना तनाव था। बोलती तो बोल देते और जबरदस्ती मुस्करा भी देते। हमारे जीवन के बीच मृत्यु की छाया घूमने लगी थी। हम एक-दूसरे से पति-पत्नी जैसा व्यवहार नहीं करते थे। लगता था, हम अपने अपार्टमेंट में न होकर किसी होस्टल में बैठे हुए हैं और एक ही रूम शेयर करने वाले दो छात्र हैं। ब्रेकफास्ट लेकर वे चले गये। एकाएक मुझे लगा कि नारी एक सराय है। इसको वीरान रखने से यह ध्वस्त हो जाएगी। पर मैं ऐसा क्यों सोचती हूँ ? क्या ऐसा सोचना पाप नहीं ? नहीं, नहीं, मुझे अपने मन में ऐसी भावना नहीं लानी चाहिए। तब क्या इसी तरह तनाव में ज़िन्दगी काटनी पड़ेगी ? मैं अपने लिए तो तैयार भी हूँ, पर उनकी परेशानी नहीं देख सकती। इन्हीं विचारों से तंग आकर मुझे कितनी बार मर जाने की इच्छा होती, पर हर बार मुझे लगता कि इससे तो उनकी परेशानी और बढ़ जाएगी और तब मैं अपने निर्णय को बदल लेती। लेकिन उससे भी तो कुछ नहीं हो पाता। डोर-बैल बज उठी। कौन होगा ? शायद वे लौट कर आए हैं। ज्योंही मैंने दरवाज़ा खोला मैं अवाक् रह गयी। वहाँ रजनी खड़ी मुस्करा रही थी। मैंने उसको अन्दर आने के लिए दरवाज़ा पूरा खोल दिया। मैं अन्दर चली आई, पर वह नहीं आई। दरवाज़ा अपने-आप बन्द हो गया। मैंने फिर दरवाज़ा खोला। वहाँ रजनी नहीं थी। वहाँ कोई नहीं था। मैंने 'टाक' पर जाकर गेटमैन से पूछा तो पता चला यहाँ कोई नहीं आई थी। यह कैसा भ्रम है ! तब मैंने सोचा, शायद रजनी के कारण ही मुझसे तने रहते हैं। ठीक है, रजनी को पाकर वे खुश होंगे। परन्तु मेरे रहते वे रजनी को न पा सकेंगे। रजनी...। फोन की घंटी टनटना उठी। उनके दोस्त का फोन था। मुझे लंच पर बुलाया था। मैं इनकार न कर सकी। अगर वे रजनी के यहाँ डिनर ले सकते हैं तो मुझे लंच लेने में क्या रुकावट ? पता

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

नहीं क्यों, मैं उस दिन खूब बन-ठन कर गयी। उनका घर शहर से दूर था। 'सब-वे' स्टेशन पर उनके दोस्त मुझे स्वयं लेने आए थे। उनका स्वभाव और व्यवहार कितना मीठा था! लंच भी काफी अच्छा बना था। उनके परिवार के बारे में मैंने पहली बार पूछा तो कहने लगे कि लाने में झंझट होता है इसलिए घर ही छोड़ आया हूँ। खाना बनाने का उनको बड़ा शौक है इसलिए कोई दिक्कत नहीं होती। पता नहीं, मेरे उन्होंने लंच कहाँ लिया होगा ? लंच के लिए तो उन्होंने घर आना ही छोड़ दिया था। जब उनके दोस्त ने सिनेमा के लिए कहा तो मैंने खुशी से 'हाँ' कर दी। सिनेमा देखे हुए एक अरसा बीत गया था। 'दि प्लैनेट ऑफ़ दि एप्स' पिक्चर अच्छी थी। पर मुझे तो इससे अधिक अच्छा एक पुरुष का साथ होना लगता था। उनकी आँखें उनकी दिल की हरकत को बता देती थीं। पर मुझे इससे भय नहीं, आनन्द होता था। डिनर भी हमने एक होटल में लिया। मुझे आश्चर्य था कि मैं यह सब किस उत्तेजना और आवेश में कर रही हूँ क्योंकि मुझे याद है उनके इसी दोस्त ने मुझे कितनी बार कार में लिफ्ट देनी चाही थी पर मैं ठुकरा देती थी और आज मैं जानबूझ कर अपने को इनके हवाले करती जा रही थी। अपने पहले रूप की अब के रूप से तुलना करके मैं स्वयं हैरान थी। कभी तो मैं इसे सपना समझने लगती। लेकिन यह सपना नहीं, सत्य था। फिसलते जीवन ने डगमगा कर पैर कहीं और रख दिये थे।

उस रात जब मैं अपने अर्पाटमेंट में लौटी तो अपने पति से एक बड़ी गद्दारी कर चुकी थी। जिन्दगी में एक नया मोड़ आ चुका था।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

सात

पार्टी से वे अभी तक नहीं लौटे थे।

आजकल मैंने पार्टी में जाना बंद कर दिया है। जाने की इच्छा होते हुए भी मैं नहीं जाती। मुझे लोगों से भय लगने लगा है। मुझे उनके दोस्त कहीं मिल न जाएँ, इसी का डर खाने लगा था। जब कभी उसे दूर से देखती हूँ अथवा वे उसका नाम लेते हैं तो मुझे लगता है कि मैं नंगी हो गयी हूँ। सच-मुच उस दिन के किये पर मुझे सदा पछतावा होता है। मुझे लंच पर नहीं जाना चाहिए था। अगर लंच पर चली गयी थी तो उसके साथ अकेले सिनेमा जाना और डिनर नहीं करना चाहिए था। मुझे याद है, पिताजी को मेरा अकेले गोपाल भैया के साथ जाना भी नहीं भाता था। उन दिनों मुझे लगता था कि पिताजी कितने शक्की मिजाज़ के हैं। पर आज मुझे लगता है, पिताजी ने सत्य कहा था। अकेली नारी अकेला पुरुष केवल नारी-पुरुष रह जाता है, वहाँ सामाजिक रिश्तेदारी कुछ काम नहीं करती। वह तो उनके सम्बन्धों को दृढ़तर बनाने के लिए केवल पर्दे का काम करती है। शायद वह उनके दोस्त की बजाय कोई और होता तो मैं इतनी हिम्मत न कर सकती। कितनी निर्भय होकर मैंने सब कुछ किया। पर इसी निर्भयता ने मेरे अन्दर जीवन-भर के लिए एक भय, अपने प्रति अवहेलना की भावना पैदा कर दी। परन्तु इस समाज में मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। होनी हो गयी है। लेकिन इस पर विचार करके अपने जीवन को दीमक लगाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अब तो ऐसा सब जगह होने लगा है। मेरा मन दोराहे पर अटक जाता था। दुविधा में पड़ जाता था। जो भी हो, मैंने उनके प्रति एक अमिट पाप किया है। मैंने उनके प्रति विश्वासघात किया है। शायद उनको भी पता है। पर उन्होंने कभी कुछ नहीं पूछा। अगर

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उनको पता है तो नाराज़ क्यों नहीं होते ? मुझे दंड क्यों नहीं देते ? पति पत्नी की ऐसी हरकत कभी नहीं सह सकता। एक हादसा धुंधले रूप में मेरे सामने तैर गया। पड़ोस में एक आफिसर और उसकी पत्नी रहती थी। दोनों में काफी मेल था। पर एक दिन दोनों में खूब झगड़ा हुआ। पति ने पत्नी को पीटा भी। इसका कारण था कि पत्नी अपने हमदम मामा के साथ मोटर-साइकिल पर बैठ कर सिनेमा चली गयी थी। मामा के आने पर पत्नी सदा खिल जाती थी और उसकी खुशी छिपाये न छुपती थी। पर मेरे पति को देखो, कितने शान्त हो गये हैं ! उनसे आँख मिलाने का मुझे साहस नहीं होता। शायद शांत और चुप रह कर के मुझे दंड दे रहे हैं। सचमुच वे मुझे पीट देते या डाँट देते तो मेरा दिल इतना बुझा-बुझा न रहता। मैं तो इन दिनों अन्दर ही अन्दर घुटन महसूस कर रही हूँ। उनके स्वभाव के गांभीर्य से मैं परेशान और हैरान हो गयी हूँ। कभी सोचती हूँ, मैं ही झगड़ा मोल ले लूँ। सब-कुछ मैं ही बता दूँ ! पर अपने को सँभाल लेती हूँ कि शायद उनको कुछ पता नहीं। इसलिए उनको चोट न लग जाए। इस तरह मेरी शंका मेरी भावना मुझमें ही पल रही थी। इसका कोई समाधान नहीं था। जिस तरह किसी गढ्ढे में पानी पड़ा-पड़ा सड़ जाता है, उसी प्रकार यह बात मेरे मन के अन्दर सड़ रही थी। अपने मन में पलती दुर्गन्ध से मैं स्वयं अकुला गयी थी।

लिफ्ट के ऊपर आने की आवाज़ आयी। वे आ रहे हैं। मैं बिस्तर पर लेट गयी। मैंने लाइट ऑफ कर दी ताकि वे यह न समझें कि मैं उनकी बाट जोह रही थी। वे अन्दर पहुँचे। उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। उनकी पीने की आदत बढ़ गयी थी। शायद उनको कोई ग़म लग गया है। पत्नी का पतिता होने का ग़म—एक दर्द। नहीं, नहीं, उनको कुछ पता नहीं। उनको इसका ख्याल भी नहीं आता। उनको केवल यही ग़म है कि जोश और आवेश में आकर मुझ जैसी औरत से बँध गये ! किसी फिल्मी धुन में मस्त थे। लाइट जल गयी। शायद उन्होने मेरी ओर देखा होगा और सोचा होगा कि कितनी गहरी नींद में सोयी है। वे वाश-रूम में जाकर फिर किचन में

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
गये। वे और पीना चाहते हैं। खाली हाथ लौट आए। लैटरपैंड लेकर कुछ लिखने लगे। रजनी को पत्र लिख रहे होंगे! शायद उनके मन में कोई भावना जग गयी हो। यदि मैं उनके दोस्त के साथ लंच, सिनेमा और डिनर पर जा सकती हूँ तो उनको पत्र लिखने का अधिकार क्यों नहीं ? यह भी तो हो सकता है कि रजनी उनकी ..। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। वे ऐसे नहीं हैं। लेकिन मैं भी तो ऐसी नहीं थी जैसी अब हूँ! जब मैं ऐसा कर सकती हूँ तो वे क्यों नहीं कर सकते ? इन दोनों के बीच मैं दीवार बन गयी हूँ। मुझे हट जाना चाहिए। अब मैं इनके जीवन को अधिक खोखला नहीं बना सकती। मुझे रजनी और उनके बीच से हट जाना चाहिए। वे लिखने में मस्त थे। उनके चेहरे पर आनन्द की एक आभा छा गयी थी। वे कितने प्रसन्न थे! मैं उनके लिए एक भार मात्र रह गयी हूँ लेकिन मुझे तो उन्होंने ही अपनाया है, मैंने उन पर ज़ोर-जुल्म नहीं किया। यह सब तो मुझ पर अत्याचार है। पर मैं भी तो उनके प्रति वफ़ादार नहीं रह गयी। शायद इसी कारण उनका साहस बढ़ गया है। सचमुच मुझे उनके दोस्त के यहाँ नहीं जाना चाहिए था। अगर न गयी होती तो मैं आज इतनी लाचार और मजबूर न होती। इतनी बुझी न होती। आज भी मुझे आश्चर्य हो रहा है कि उस दिन मैं किस प्रकार उनके दोस्त की किसी भी बात पर इनकार न कर सकी। उसने कोई ज़बरदस्ती नहीं की थी जो मैं उसके इशारों पर बढ़ती चली गयी। मुझे उस दिन कोई ग्लानि अथवा दुख नहीं हुआ था, पर आज अपनी इस भूल से मैं स्वयं घबरा रही हूँ। कभी सोचती हूँ, यह सपना था। परन्तु सत्य को सपने से उलझाया नहीं जा सकता। यह सत्य था कि मैंने आवेश में कुछ कर दिया और यह कुछ मेरे लिए, मेरे जीवन के लिए एक बड़ा भार और भय की वस्तु बन गया था। मैंने कितनी बार उनके दोस्त को दोषी ठहराना चाहा और इस पर संतोष कर लेना चाहा कि दोष दोनों का है। पर अन्तर्मन कुछ और ही कहता है। जिस वक्त मैंने उसके यहाँ जाने की ठान ली थी उसी समय मेरे मन में पाप समा गया था। जीवन से खेलने की एक मुराद पैदा हो गयी थी। अग्नि में जलने स्वयं गयी तो अग्नि

CC-0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

को कैसे दोष दूँ ? अग्नि का तो [illegible] है कि वह जला सकती है। ठंडे गोश्त को तपा कर गर्म बना सकती है। वे टेबुल से उठे। एक बार मेरी और देख कर ड्राइंग-रूम में चले गये। जब वे काफी देर तक न लौटे तो मैं उठकर देखने गयी। आखिर वे मेरे पति हैं। उनकी दया से ही तो मैंने जीवन पाया है। पर कभी-कभी सोचती हूँ कि इस जीवन से तो पिंजड़े का जीवन अच्छा था। पत्नी बनने से अधिक नौकरानी बने रहने में भला था। मनुष्य को कभी-कभी जीवन की विशालता से जीवन की संकीर्णता अच्छी लगती है। ज्ञान तकलीफों को अनावश्यक रूप से बढ़ा देता है। वे कोच पर सो गये थे। टेबुल पर लिखा पत्र उन्होंने ऐसे ही क्यों छोड़ दिया ? शायद मुझे दिखाने के लिए कि वे रजनी को चाहते है। रजनी उनकी...। बहुत पीने के कारण याद नहीं रहा होगा। टेबुल पर पड़ा पत्र अपने गर्भ की बात सुनाने के लिए मुझे चुनौती दे रहा था। एकाएक मेरा मन भारी हो गया। एक मन ने कहा कि उनकी चिठ्ठी पढ़ने की मुझे क्या आवश्यकता हैं। पर मैं चुपचाप टेबुल पर चली गयी। जो कुछ वहाँ लिखा था उसे पढ़ कर विस्मय में खड़ी रह गयी। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। मन ने कहा कि तुम्हारी आंखें धोखा खा रही हैं। मेरे सामने कागज़ पर अनचाही पंक्तियाँ बिखरी हुई थीं। क्या रजनी के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं ? पंक्तियाँ उभर-उभर कर मेरे सामने आने लगी। '...हिमालयी आग की ठंडी आँच से तड़प कर मैं यहाँ हूँ...मेरे चारों तरफ फटे हुए चेहरे हैं। टूटी हुई भावनायें हैं, कटी हुई ज़िन्दगी है...यहाँ लाश ही लाश हैं... यहाँ दास ही दास हैं...।' मैं उनकी भावना को समझ नहीं पा रही थी। पर इतना पता लग गया कि वे अपने जीवन से तंग हैं। जो आदमी अपने जीवन से तंग होता है उसे संसार की कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती। शायद रजनी का पत्र न आया हो। पर अपने पति पर इस तरह शक नहीं करना चाहिये। मुझे उनके प्रति दया आ गयी। मैंने ड्राइंग-रूम में जाकर उनका कोट और जूते उतारे। यह पुरुष मेरा पति है। कोई भी नारी अपने पति की सेवा करने से दासी नहीं होती।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
मुझे तो इस पुरुष की दासी होने में भी मज़ा आने लगा। मैं तो इनके लिए सराय भी हो जाऊँगी। यदि इससे इनका जीवन ठीक हो जाए। मैं वहीं बैठ गयी। उनके बालों से खेलने लगी। मेरा मन करुणा से भर गया। मैंने अपना सिर उनकी छाती पर टिका दिया। हर्ष से आँसू छलछला आए। वे निद्रा में मस्त थे परन्तु मैं तो सोना नहीं चाहती थी। इस आनन्द की भावना को खोना नहीं चाहती। उनको डिस्टर्ब करना भी नहीं चाहती थी। वे मेरे बच्चे के पिता हैं। मैंने उनको आलिंगन में बाँध लिया। मैं चाह कर भी उनको न उठा सकी। खिड़की पर चली गयी। चाँदनी की छाया में समुद्र गुमसुम सोया पड़ा था। एक किनारे पर ज़मीन उभर कर एक छोटी पहाड़ी का रूप लेने की कोशिश कर रही थी। समुद्र और पहाड़। जीवन और आकांक्षा को एक दूसरे से गले मिलते देख मुझे लगा कि मैं सपने में हूँ। मैंने अपनी दृष्टि को कमरे के अन्दर खींच लिया। वहाँ नया जीवन आ गया था। ऐसा लगा कि स्वयम्भू के चित्र से ज्योति प्रकाशित हो गयी है। पशुपति के काष्ठ मन्दिर के भीतर एक ज्योति पलने लगी है। शो-केस में पड़े किसान युवक-युवती, भैरव-लाखे, देवी सभी जीवित हो उठे हैं। कमरा इनके गीत, बाजे और नृत्य से भर गया है। लेकिन एकाएक सब मर गये और वातावरण में उनके दोस्त का चेहरा तैर गया। नहीं, नहीं, मुझे उनसे कोई नहीं छीन सकता। मैं केवल उनकी हूँ और उनकी ही रहूँगी। मैं उनको देखने लगी। लगा कि वे हँस रहे हैं, मुझ पर व्यंग्य कर रहे हैं। मैंने अपने को सँभालना शुरू किया, पर सब बेकार। मैंने उनको उठाने की कोशिश की पर वे तो गहरी नींद में सोये हुए थे। मैं बेड-रूम में चली गयी। मुझे भय लगने लगा। दवा की एक शीशी से रुई निकाली। ऐश-ट्रे पर पड़ी सिगरेट की धूल को हाथ में लेकर बाती बनाने लगी कि शायद इससे मन बहक जाए, बहल जाए। पर बाती बार-बार टूट जाती। मैं हैरान हो गयी। मेरा जीवन भी इसी तरह टूटा जा रहा था। मैं उनके कितने निकट पहुँच कर भी कितनी दूर थी! मुझे समुद्र से भी डर लगने लगा। खिड़की पर पर्दे गिरा दिये। मैं

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

किचन में चली गयी। खिड़की खोल कर सामने के फुटपाथ पर अपनी नज़र दौड़ाना शुरू किया। जहाँ तक देखा जा सकता था, देखने लगी। अखबार के कुछ टुकड़े सड़कों पर हवा के सहारे उड़ रहे थे। कभी-कभार कुछ मोटरें गुज़र जाती थीं। उस मनहूस रात में अपटाउन के एक फुटपाथ को देख कर रत्नपार्क से लगे फुटपाथ की याद आ गयी। जीने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता ? जैसे माँ की गोद में खेलने की बजाय अखबार और अमरूद बेचने वाले बच्चे। पति के मरने पर बच्चों को खिलाने की ज़िम्मेवारी लिए बेवा जो रोटी पका कर बेचती थी और रिक्शेवाले जो अपनी पत्नी से संतुष्ट न होकर अपने मनोरंजन के लिए उसके यहाँ खाने आते। तालों के ढेर में ऊँघता हुआ एक बूढ़ा। मुर्गियों के जीवन का क्रय-विक्रय करते लोग। सचमुच जीवन जीना एक भार है। जीने के लिए सराय, नौकर और दास बना मानव !

'चन्द्र !' उनके स्वर से मैं अपने संसार में चली आई। पर मैंने सुन कर भी अनसुनी कर दी। मैं जान गयी कि वे एकाएक उठ गये हैं और मुझे न पाकर घबरा गये हैं। वे बेड-रूम में गये। उन्होंने मुझे फिर बुलाया। इस बार भी मैंने जवाब न दिया। शायद उन्होंने सोचा हो कि मैं उनको छोड़ कर उनके दोस्त के यहाँ चली गयी हूँ। वे किचन की ओर आने लगे। मुझे तो एकाएक नीचे कूद पड़ने की इच्छा हो उठी। जीने की इच्छा रत्ती भर भी नहीं रह गयी थी। मैं सराय बन कर जीना नहीं चाहती थी। दासी बन कर जीना नहीं चाहती थी। अब तो कुछ भी बन कर जीना नहीं चाहती। पर मैं कूद न सकी। बच्चे की ममता, उनके प्रेम और जीवन से लगाव ने मुझे जकड़ लिया। मृत्यु से मित्रता करने का साहस न हुआ। मैं खड़ी रह गयी। मृत्यु मेरे नज़दीक आकर भी कट गयी।

—तुम यहाँ क्या कर रही हो ? यह खिड़की क्यों खोल रखी है ?

उनके स्वर में कंपन था। उनके चेहरे पर भय की लहर फैली हुई थी। तब मुझे याद आया कि काठमाँडू में एक बार मैंने उनको धमकी दी थी कि अगर वे मुझे अधिक परेशान करेंगे तो मैं खिड़की से कूद कर जान दे दूंगी।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy
मैं मन ही मन मुस्करायी। पता नहीं क्यों, वे एकाएक लौट गये। मुझे उनका इस तरह आना और लौट जाना अच्छा नहीं लगा। क्या मुझे मर जाने को कह रहे हैं? मुझसे तंग आ गये होंगे। मैं आवेश में कूद न पड़ूँ इसलिए मैंने खिड़की बंद कर दी। खिड़की से कूद कर जान देने की धमकी की घटना याद आ गयी। बात यों हुई थी। काठमाँडू के घर में एक दिन उनके दोस्त आए थे और काफी रात तक भी नहीं गये। मैं उकता गयी थी। उस दिन मैं उनसे अकेले में प्यार भरी बातें करने के लिए विकल और चंचल थी। ऐसे में उन्होंने कहा : चन्द्र, घर में देर से आने पर तुम मुझ पर नाराज़ होती हो। इनको देखो, जाने की कोई जल्दी नहीं। दोस्तों के बीच यही होता है। बातों में मन रम जाता है। उस दिन भी सदा की तरह मैं मायके से जल्दी आई थी। इस तरह यह मुझ पर दोहरा ताना था। मैंने कह दिया : ये बिना परिवार के होंगे। उन्होंने कहा : परिवार तो नहीं, बीवी है। मेरे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—दीखते तो नहीं। मेरे इस उत्तर पर उनका चेहरा तन गया। बातों का सिलसिला जारी रखने के लिए उनके दोस्त से पूछ लिया—आप रहते कहाँ हैं? उनका दोस्त जवाब देने को ही था कि उन्होंने ताना देकर पूरा पता ही बता दिया। मैं चुपचाप कमरे से ऊपर चली गयी। उनसे बात करने की कितनी तरंग लेकर गयी थी और कमरे में जाते ही न जाने सब कहाँ लुप्त हो गया। उनका दोस्त चला गया। जब मैं कमरे में पहुँची तो वे गुस्से में पागल हुए बैठे थे। उन्होंने मुझे, पता नहीं, क्या-क्या कहा...मैं एक गंदी, सस्ती लड़की हूँ। इस तरह पराये पुरुष से पूछना कि वह शादीशुदा है या नहीं और फिर उसके घर का पता पूछना मेरे बाज़ारू स्वभाव और चरित्रहीनता का प्रतीक है। वे तो यहाँ तक कह गये कि मेरी जैसी लड़की को अपना बना कर उन्होंने भारी भूल की है। मैं अवाक् रह गयी। मुझसे भी न रहा गया और कह पड़ी—आपके साथ रहने से तो मर जाना अच्छा है। और मैं खिड़की खोल कर कूद पड़ने को तैयार हो गयी। तब कहीं जाकर उनका गुस्सा शान्त हुआ। पर आज देखो, वे बिना कहे चले गये। वे चाहते हैं कि मैं उनके जीवन से हट जाऊँ। उन्होंने मुझे कभी

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

चाहा ही नहीं। मैं तो मात्र उनकी दया की पात्र रही। मैं नीच, गंदी लड़की पहले तो न थी पर अब होने लगी हूँ। लेकिन दोष किसका है ? इसका जवाब न मेरे पास है और न होगा। पर उनके विचार में मैं पहले भी गंदी थी, अब भी हूँ और भविष्य में भी रहूँगी। मैं बेड-रूम में गयी। वे सो चुके थे। उनके विचार कागज़ पर तड़प रहे थे। आदर्श और यथार्थ में फर्क होता है। मनुष्य को जीने के लिए नकली खाल लगानी ही पड़ती है। उन्होंने जो आज मेरी अवहेलना की है और मर जाने के लिए स्वतन्त्र कर दिया है उसका मैं प्रतिकार लूंगी। अवश्य ही उन्होंने मर जाने की स्वतन्त्रता दी है वरना वे मुझे अपने साथ क्यों नहीं ले गये ? उस असमय किचन में खुली खिड़की के सामने मुझे देख कर पहले भय की भावना लाना और फिर लौट जाने का क्या तात्पर्य है ? मैं मरूँगी नहीं। मैं ज़िन्दा रह कर इसका बदला लूंगी। मैं कल ही उनके दोस्त के यहाँ जाऊँगी। लंच, डिनर उनके साथ लूंगी और, और...।

मैंने एकाएक यह भयानक निर्णय ले लिया। पीछे हटने को मेरा 'मैं' तैयार नहीं था। मैं लाख चाह कर भी इस बरबादी के लिए अपने को समझा न सकी। मैंने उनके लिखे कागज़ को फाड़ कर फेंक दिया। मुझे उनकी चीज़ बिगाड़ने **में** आनन्द आ रहा था। मैं भी तो उनकी हूँ। इस कागज़ की तरह अपने को भी टुकड़ा-टुकड़ा कर दूंगी। मेरे अहं को एक संतोष हुआ। आदर्श को यथार्थ से हार खानी पड़ेगी। एक फूल के लिए सारे जीवन की कुरबानी नहीं की जा सकती। फूल मुरझा जाएगा, जीवन खिलता रहेगा।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

आठ

'चन्द्र !'

उनकी आवाज़ ने मुझे आँखें खोलने को बाध्य किया। कमरे को देख कर मैं हैरान रह गयी। मैं अपने को पहचान रही थी, उनको भी पहचान रही थी, पर कमरे का वातावरण अपरिचित था। मेरी आँखों में जीवन देख कर वे एक ओर चले गये। मैं उनके चेहरे की भावना को पढ़ नहीं पा रही थी। संध्या की सुगन्ध खिड़कियों से छन कर भीतर आ रही थी। वे मेरे लिए चाय लेकर आ गये। पर यह सब क्यों? सिर में कुछ दर्द-सा उभरा। सिर पर हाथ पड़ते ही मैं काँप गयी। वहाँ पट्टी बँधी थी। एक सदमा लगा। मुझे याद आया कि मैं टेड के साथ फिलाडेलफिया आई थी। मैं तो फिलाडेलफिया में हूँ लेकिन उनको देख कर मेरी आत्मा तिलमिला उठी। कमरे से मुझे डर लगने लगा। जीवन से घृणा हो गयी।

—चन्द्र, चाय लोगी ?

उनके स्वर की ममता ने मुझे बेशर्म कर दिया। वे इस तरह क्यों मुझे प्यार करते हैं? मुझ जैसी् गंदी और गिरी हुई औरत को इस तरह सद्‌भावना दिखाना मुझे ही अच्छा नहीं लग रहा था। वे तो उस समाज के हैं जहाँ पत्नी के चरित्र पर लांछना लगा कर उसे गधे की ज़िन्दगी और कुत्ते की मौत से भी बढ़ कर सज़ा दी जा सकती है। भरी सड़क पर लोग ऐसी पत्नियों को पीटते हैं, लहूलुहान कर घसीटते हुए बाहर निकाल देते हैं। मेरे मन को इसी में संतोष होता कि वे मुझे पीट-पीट कर मार देते। ऐसी ज़िन्दगी से मौत भली। उनसे प्रतिकार लेने की बजाय मैं अपने से प्रतिकार ले रही थी। मैंने चाय लेने की हिम्मत न की। उन्होंने मेरे सामने टेबुल लगा कर चाय रख दी। वे बातें करना चाहते थे। मेरे उलझे हुए मन को

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

सुलझाना चाहते थे। पर मेरे लिए यह सब असहनीय थी। मैंने आँखें मूंद लीं। उनकी किसी बात का जवाब न दिया। मुझे सोता समझ कर वे कमरे से बाहर चले गये। सिर का दर्द मेरे जीवन का दर्द बनकर उभर पड़ा।

...उनसे बदला लेने की भावना, अपने को बरबाद कर उनको हैरान और परेशान करने की लालसा लेकर मैं उनके दोस्त के साथ सिनेमा और क्लब जाने लगी। कभी रात में भी उसी के यहाँ रह जाती। पर उनको इसकी परवाह न थी। वे चुप रह जाते। अनजान बने रहते। इसी दौरान एकाएक टेड से मेरी दोस्ती बढ़ गयी। उधर रजनी के पत्र उनको बराबर आ रहे थे। मुझे भी इसकी फिक्र नहीं थी। टेड के साथ मैं हफ्तों इधर-उधर चली जाती थी और उनसे भी अधिक टेड की होती चली गयी। उन्होंने काठमाँडू से बच्चे को बुला लिया। पर मुझमें बच्चे की माँ की भावना कब की मर चुकी थी। बच्चे ने भी मुझे अपने पथ से विचलित न होने दिया। लेकिन मैं अपने को सुखी नहीं पा रही थी। उनकी कायरता पर मेरी खीझ बढ़ती जा रही थी। उनको पता था कि मैं किसी और की हो गयी हूँ फिर भी व्यवहार में कोई अन्तर नहीं था। एक दोस्त से, शादीशुदा हो या नहीं और घर का पता पूछने पर गंदी और नीच की लाँछना लगाने वाले वे एक-दम शान्त बने पड़े थे। मैं प्रतिकार की भावना के संघर्ष में उनसे हारती जा रही थी। एक दिन टेड को मैं अपने अपार्टमेंट में लायी। उन्होंने उससे दोस्ती कर ली और काम का बहाना बना कर हम दोनों की सिनेमा जाने के लिए बाध्य किया। तब एक दिन मैंने एक गंभीर निर्णय कर लिया। टेड के साथ मैं किंगस्टन में उसके माता-पिता से मिल कर आई थी। मुझसे वे सब प्रसन्न थे। टेड भी काफी संतुष्ट था। अब मैं सदा यहीं रह जाऊँगी। मुझे प्रसन्नता थी कि अब सुन्दरमानजी को एक गहरी चोट लगेगी। मैं लिफ्ट से उतर कर सीधे उनसे जाकर कहने लगी—

—सुन्दर, तुमने दया करके मुझे नौकरानी की ज़िन्दगी से मुक्ति दिलायी है। अब एक कृपा और करो।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

—क्या ?

मुस्कराते हुए सुन्दर ने कहा। सुन्दर के साथ अपने बेटे को देख कर मैं जो कहना चाहती थी भूल गयी। मेरा हृदय काँपने लगा। मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने लपक कर बच्चे को उठाया और चिल्ला पड़ी—

—मेरे बेटे—बेटे लाल !

इसे देख सुन्दर विजय से मुस्करा पड़ा। इसी कारण बच्चे को काठमाँडू से लाया गया था। इसी ममता ने नारी को कितनी बार दासी बने रहने पर मजबूर किया है। पर अब मैं दासी नहीं, सराय हूँ। इस सराय में कोई नया राही आकर टिकेगा। मैंने बच्चे को गोदी से उतार दिया और सुन्दर से कहा—

—मैं तुमसे तलाक चाहती हूँ। मैंने टेड से शादी करने का निर्णय कर लिया है।

सुन्दर ने कोई जवाब नहीं दिया। बेटे ने मेरे परिवर्तन को देख लिया। वह माँ-माँ कहकर मुझसे चिपकने लगा। मैंने दिल को कठोर करके कहा—

—मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ। तुम्हारी माँ तो कब की मर चुकी।

···वे फिर मुझे देखने आ गये। मेरे सामने की कुर्सी पर बैठ गये। कुछ सोच रहे थे। वे कुछ कहने को विह्वल थे। मेरी आँखें खुली देखकर कहा—

—चन्द्र, तुमने चाय क्यों नहीं पी ?

मैंने जवाब न देना ही अच्छा समझा। मैंने अपने कलंक की छाया से उनको दूर रखना ही अच्छा समझा। मेरा मन था कि बेटे में विषय में कुछ पूछूँ पर मेरे जैसी माँ को कौन बेटा अपनायेगा ? मैंने फिर आँखें मूँद ली। रात कमरे में उतर चुकी थी। उन्होंने बत्ती जला दी।

—चन्द्र, आज हम न्यूयार्क लौट रहे हैं। तुम्हारा क्या विचार है ?

—सुन्दर, मुझे यहीं छोड़ दो। मैं यहीं रहूँगी। मैं और कहीं नहीं जाऊँगी।

आखिर मुझे बोलना ही पड़ा। सुन्दर ने न्यूयार्क चलने का आग्रह ही

CC0. Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

ऐसे किया जिसे मैं टाल न सकी। ट्रेन में हम दोनों साथ बैठे थे। बाहर गहन अन्धकार था। फिर भी सुन्दर से बचने के लिए मैं अँधेरे में कुछ देख पाने की कोशिश कर रही थी। ट्रेन रफ्तार में जा रही थी। सुन्दर ऊँघने लगा था। मैं फिर बिखरे अतीत के विचारों में समा गयी।

...मैंने बच्चे से दूर रहने के लिए शहर से दूर एक जगह नौकरी कर ली। नौकरी के दौरान एक दिन मैं न्यूयार्क आई और टेड के यहाँ चली गयी। उसका कमरा बंद था। मैंने कितना खटखटाया पर उसने दरवाज़ा नहीं खोला। लाइट जली हुई थी और रेडियो भी बज रहा था। लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। मेरा मन डूबने लगा। ऐसा लगा जैसे मैं ज़मीन में धँसती जा रही हूँ। मैं थक कर दरवाजे के सामने ही बैठ गयी। नहीं, टेड ऐसा नहीं कर सकता। क्यों नहीं कर सकता? भँवरों को अनेक फूल चूसने में मज़ा आता है। प्रत्येक पुरुष भंवरा ही होता है। मुझे यहाँ इस तरह नहीं रहना चाहिए। सुन्दर के यहाँ जाना ही अच्छा होगा। उसके दरवाज़े मेरे लिए कभी बंद नहीं हो सकते। टेड को मेरी आवश्यकता नहीं, मेरी जवानी की आवश्यकता है। किसी को भी मेरी ज़रूरत नहीं है। मैं तो एक सराय हूँ। कुछ क्षण के लिए किसी की आवश्यकता पूरी करने का एक साधन हूँ। सराय सदा के लिए किसी एक की नहीं होती। इसलिए हरदम इसमें पराया ही रहता है। मैं वापस जाने के लिए उठ पड़ी। सीढ़ियाँ उतरने ही लगी थी कि दरवाज़ा खुला।

—चन्द्र, तुम ! लौटी क्यों जा रही हो ?

मेरे पैर वहीं रुक गये। मैं लौट पड़ी। कमरे के अन्दर पहुँच कर एक निगाह चारों तरफ फेरी। वहाँ और कोई नहीं था। कमरे में नारी की गंध के नाम पर केवल मेरी गंध थी। परन्तु शराब की गंध ज़ोरों पर थी। पलंग के नीचे एक ओर 'एक्ज़िस्टेन्शियलिज़्म' की किताव पड़ी थी और दूसरी ओर 'भगवद्गीता'। टेड ग्रीक मूर्ति की तरह खड़ा था। उसने कहा कि उसका मन ठीक नहीं क्योंकि वह वहुत जल्दी वियतनाम युद्ध के लिए जा रहा था।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

उसका ड्राफ्ट-आर्डर आ गया था.। परन्तु वह जाना नहीं चाहता था। विद्यार्थी-जीवन में उसने इसके विरोध में बोल कर स्वर्णपदक पाया था और अब अपने जीवन-दर्शन को कुचल कर उसे जाना पड़ रहा था। मैंने उसे कनाडा भाग जाने की सलाह दी। लेकिन वह जीवन से भागना नहीं चाहता था। वह शराब पीता चला गया और शराब पीता-पीता ही सो गया। उसे मेरी उपस्थिति का भी ज्ञान न रहा। मुझसे बातें करना और प्रेम करना भी भूल गया।

...ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी। अगले स्टेशन पर हमें उतरना था। उन्होंने आँखें मूंदी हुई थीं। पता नहीं क्या सोचते होंगे? जीवन देने के नाम पर अपना जीवन भी खो बैठे थे। फिर भी उस भार को वहन करने में विचलित नहीं हो रहे थे ...।

जीवन से संघर्ष करने में मैं हार गयी। मैं सुन्दर के यहाँ चली आई। उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं था। फिर भी हमारे बीच मनमुटाव था। बच्चा भी मुझसे दूर रहना सीख गया था। एक दिन एकाएक टेड का फोन आया। मैंने सोचा था कि टेड वियतनाम जा चुका होगा और शायद इस संसार से भी जा चुका होगा। उसने मुझे फिलाडेलफिया में एक बार मिलने के लिए बुलाया। मैं सुन्दर से कहे बिना चली गयी। टेड काफी बदल गया था। उसके स्वभाव में कड़वापन था। अब वह वियतनाम युद्ध के लिए मर-मिटने को तैयार हो गया था। हम एक रेस्तराँ में थे। मोमबत्ती के प्रकाश में रेस्तराँ का वातावरण अजीब-सा लग रहा था। ऐसा लगता था कि वह अभी बुझ जाएगी। वह बातें भी करता जाता और शराब के पेग पर पेग चढ़ाये जा रहा था। वियतनाम युद्ध पर उससे मेरी बहस छिड़ गयी। न तो वह अपने विचारों को बदलता और न मैं। दोनों जोश में आ गये थे। पता नहीं उसको क्या हो गया, उसने शराब की बोतल मेरे सिर पर पर दे मारी...।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy

...हमारा स्टेशन आ गया। हम अपने अपार्टमेंट में चले आए। बच्चा किसी और के यहाँ था। एक सप्ताह तक उन्होंने कुछ नहीं कहा। लेकिन एक दिन कहने लगे—

—चन्द्र, अगर तुम टेड को इतना चाहती हो तो यह लड़ाई-झगड़ा अच्छा नहीं। उसे भी यहीं बुला लो और शादी कर लो।

यह मेरे पति हैं जो मुझसे दूसरी शादी करने को कह रहे हैं। उनको यह कहने का क्या अधिकार है? मैं उनकी नौकरानी नहीं हूँ जो उनके कहने पर शादी कर लूँ। पर वे मुझे सुखी देखना चाहते हैं। लेकिन उनको क्या पता कि टेड कहाँ चला गया है? अब तो वह मुझको भूल भी चुका होगा। मुझसे जवाब न पाकर वे आफिस चले गये। अब वे भी मुझे कभी नहीं देख पायेंगे। एक बार मुझे बच्चे की ममता ने रोकना चाहा। पर मैं भार बन कर जीना नहीं चाहती थी। मेरा जीना मेरे लिए ही नहीं, उनके लिए भी दुश्वार हो गया। उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं किया? मैंने उनकी ज़िन्दगी में दीमक लगा दी। मेरे कारण उनका जीवन भी फिसल गया। दया में पलते जीवन का अंत ऐसा ही होता है। मैं अब किसी की दया में नहीं जीना चाहती। इससे तो मौत भली। मौत भी तो एक नयी ज़िन्दगी का पहला कदम है। मैं दृढ़ निश्चय करके कमरे से बाहर चली आई। धीरे-धीरे उस पथ पर चल पड़ी जहाँ से मुझे कभी नहीं लौटना था।

मेरे सब अपने दूर होते चले गये। मैं धीरे-धीरे निश्चित रूप से अपने अनजाने ठौर पर बढ़ी जा रही थी।

मुझे संगीत प्रिय लगता है। मुझे मृत्यु से प्यार है। सचमुच मृत्यु के संगीत में बड़ा दर्द होता है और यह दर्द बड़ा मीठा होता है।

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Research Academy